वावा वटेसरनाथ

बाबा बटेसरनाथ

नागार्जुन

बाबा बटेसरनाथ

श्री जे. बगरहट्टा, श्री रामचन्द्र शर्मा,
श्री हरिशंकर शर्मा एवम्

घने पत्तों, गुँथी टहनियो और आडी-तिरछी डालोंवाला वह शान्ति-निकेतन था ही ऐसा कि हर तरह के लोग आ-आकर उसका आश्रय लेते।

खुशी में पागल आदमी यहाँ आता और आगे के लिए योजनाओं के सुनहले लड्डू बनाया करता। विपत्ति का पहाड़ जिसकी गरदन तोड़ रहा होता, वह बेचारा भी यहाँ आता और दृढता के सबक लेता। प्रेमी आता, प्रेमिका आती। रात के अँधेरे मे चोर आया करते। रुपयो की उमस से परेशान कंजूस, सासों की खुराफ़ातो से परेशान बहुएँ, गणित के सवालों से परेशान स्कूली लड़के, साझेदार की साजिशों से परेशान गृहस्थ, महाजन की बेईमानियों से ऊबे हुए गरीब किसान, कुर्की का समन पाकर बौखलायी हुई विधवा, प्रायश्चित्त के पचड़े मे पड़कर धर्म-शास्त्री, पण्डित से डरा हुआ अछूत, गार्जियन की निगरानियों से तंग आया हुआ नटखट छोकरा···कौन नही आता बटेसर बाबा के पास, और कौन नही यहाँ आकर अपने को ताजा महसूस करता ?

खाना खाकर जैकिसुन यादव सीधे इस बरगद के तले आ बैठा।

जेठ की पूनम थी। अभी-अभी शाम हुई थी। पूरब की ओर चन्द्र-मण्डल क्षितिज से ऊपर उठ चुका था। उसे लगा कि चाँदी की यह बरफ़ीली परात उसकी छाती और कपार पर ग्लिसरीन का मोटा प्रलेप चढानेवाली है। दिन-भर की गर्मी और थकान के बाद अमृतमय किरणों

का यह अभिषेक उसे वरदान मालूम हो रहा था—

दो-चार कच्ची ईंटें इधर-उधर पड़ी थी। एक ईंट पर सिर रखकर वह लेट गया और सोचने लगा…

इस बरगद को उसके परदादा ने रोपा था। सौ वर्ष से ऊपर की बात है। '३४ के भूकम्प ने इस पेड को टेढा कर दिया, आधी जड़ें धरती से बाहर हो गयी। इस स्थिति मे भी पिछले अठारह वर्षों से यह बंकिम वृक्षराज सकुशल विद्यमान है। जीवन-शक्ति तनिक भी क्षीण नही हुई है।

गाँव से बाहर, चालू रास्ते के किनारे होने के कारण यह पेड लोगों का आकर्षण-केन्द्र था। पिछले अठारह वर्षों से बेचारा 'बाँकेबिहारी' हो गया था, लोगों को पूरी तरह अपनी छाँह नही दे पाता तथापि उसके प्रति जनता का स्नेह कम नही हुआ था। ममता बल्कि और बढ आयी थी। लोग ऐसा सोचते कि उनके एक महान् प्रियजन को लकवा मार गया है। एक बार पड़ौस के गाँव का एक विद्यार्थी आया। वह पटना मे इजीनियरिंग की पढ़ाई करता था। इस वनस्पति को देखकर उसने लोगो से कहा : साइस ने अब असम्भव को सम्भव बना दिया है; रूस के इजीनियर पुराने-से-पुराने पेड़ को जड़-मूल समेत उठाकर एक से दूसरी जगह लगा देते हैं…हो सकता है कि आगे चलकर हम भी इस वृक्षराज को सीधा करने की कोई तदबीर निकाल लें…लोगों की आँखें चमक उठी। उन्होंने मन-ही-मन तय किया—हम भी अपने बरगद बाबा को सीधा कर लेगे।

मगर अभी तो एक और ही सकट मँडरा रहा था इस बरगद बाबा पर।

पिछले वर्ष की बात है। जमीदारी-उन्मूलन शुरू किया सरकार ने। जमीदार तो पहले ही से चौकस थे। अब उन्होंने सार्वजनिक उपयोग की भूमियो को चुपके-चुपके बेचना आरम्भ कर दिया। लालची किसान दो-चार दस-पाँच किस गाँव मे नही होते! टुनाइ पाठक और

जैनरायन झा ने राजा बहादुर से बरगदवाली यह जमीन और उधर-वाली पुरानी पोखर चुपचाप बन्दोबस्त मे ले ली। गाँववालों को मालूम हुआ तो वे क्रोध और घृणा से सुलग उठे।

सुलग उठना तो उनके अपने बस की बात थी, लेकिन बेदख़ली का रुकना उन्हे बूते से बाहर की बात लगी।

गाँव के दो-तीन जवान थाना-अदालत-कचहरी से लेकर कांग्रेस कमेटी-असेम्बली-पार्लियामेण्ट के प्रभुओं तक दौड़-धूप करने लगे। क्या ऊपर, क्या नीचे—सब जगह लालफीता सचाई और न्याय के गले को कसे हुए था। नेताओं का आश्वासन एक ओर और नौकरशाहों की मनमानी दूसरी ओर, जमीदार की तिकड़म एक ओर और जनसाधारण की बेबसी दूसरी ओर···सिर्फ उत्साह भला क्या कर लेगा!

जैकिसुन अपने दो साथियों के साथ दिन-भर आज भटका था। कल अफवाह उडी कि पाठक और जैनरायन बरगद को कटवाना चाहते है। चिन्ता तो बरगद को बचाने की सबको हुई, परन्तु जैकिसुन का कलेजा फटने लगा।

परदादा ने इस पेड़ को बेटे की तरह पाला-पोसा था। दादा और बाप ने इसकी सेवा डटकर की थी। जैकिसुन ख़ुद बचपन से लेकर अब तक यह सब अपनी आँखों से देखता आया। '३४ के भूकम्प ने जब बरगद बाबा को आधा उखाड दिया तो कई दिनों तक जैकिसुन का बाप जानू खोया-खोया-सा रहा था; कई दिनो तक दादी के मुँह से बोल नही फूटा था और माँ ने बुरे सपने देखे थे। ऐसा लगता था कि बस्ती रुपउली के इस अहीर-परिवार का कोई अपना बुजुर्ग घायल होकर गिर गया है। धरती डोली तो डोली, लेकिन रुपउली वालों का वह भारी नुकसान कर गयी थी। मकान गिरे थे, खड़े कर लिये गये। भीतें फटी थी, दुरुस्त कर ली गयी। खेतों मे बालू निकल आया था, हटा दिया गया। मगर इस बरगद को लोग सीधा नही कर पाये। किसान दुःखी थे, मजदूर दुःखी थे। छोटी-छोटी उम्रवाले चरवाहों तक को इस घटना से अफ़सोस

हुआ था। दाँतों-से-दाँत दबाकर बहू-बेटियाँ तक बरगद बाबा की इस दुर्दशा का अनुभव किया करती।

बडी देर तक जैकिसुन सोचता रहा।

सोचते-सोचते उसका दिमाग भन्ना उठा, कपार की रगें फटने लगी। माथा जरा-सा इधर-उधर होता कि खोपड़ी बीचो-बीच दरक-सी उठती। बाकी शरीर चेतना से शून्य होकर पड़ा था। हाथ कभी छाती पर जाता, कभी नीचे आता। पैर लम्बे-लम्बे होकर छितरे पड़े थे।

जैकिसुन का मन चिन्ता के घने जाल में खो गया। गहरी थकावट ने उसकी नस-नस को बेकाम बना दिया था।

पूर्णिमा का शशि ऊपर उठ आया था। चांदनी अपना धवल-पाण्डुर रूप पकड़ चुकी थी और जैकिसुन की पलकें अच्छी तरह मुँद आयी थी —श्वास का क्रम सम अनुपात पर आ पहुँचा था।

कच्ची ईंट का तकिया बनाकर बाईस साल का वह नौजवान धरती पर सो गया।

जेठ की पूनम चांदनी क्या बरसा रही थी, गाढ़ा कढा दूध बर्फ की तरावट लेकर भूतल को शीतल बना रहा था। दिन की झुलसी हुई प्रकृति इस अमृत-वर्षा मे जुडा रही थी।

२

रात काफ़ी हो आयी और जैकिसुन नाक बजा रहा था।

कुछ देर बाद उसके दो साथी आकर उसे उठाने लगे—झकझोर-झकझोरकर। लेकिन वह नही उठा। पलकें तक नही खुली जैकिसुन

की।

आखिर वे भी उसी तरह कच्ची ईंट को माथे के नीचे रखकर लेट गये। उन्हें भी फौरन नींद आ गयी।

अब एक नही, तीन नाकें बज रही थी।

गाँव के लोग देर रात तक नही जागते और नीद उनकी तडके खुल जाती है।

रात डेढ पहर करीब बीत चुकी थी। सारा गाँव सो गया था। कुत्ते तक नीरव थे...

शाखाओ की घनी-हरी झुरमुटों मे से बड़े-बड़े सफेद बालोंवाला एक भारी सिर निकल आया। दाढ़ी भी काफ़ी बड़ी-बड़ी थी।

यह एक विशालकाय मानव था।

हाथ-पैर खूब बड़े-बड़े। शरीर जिस प्रकार लम्बा-छरहरा था, डील-डौल उतनी मोटी नही थी। कमर मे मटमैली धोती लपेटी हुई थी, बाकी बदन यों ही खाली था। छाती, पीठ, जाँघो और बाँहों पर रोओं के जो जंगल थे, उन पर मुलतानी मिट्टी-सा हल्का पीलापन छाया हुआ था। भारी-भरकम काठीवाला वह आदमी आहिस्ते-आहिस्ते आया और जैकिसुन के पास खडा हो गया।

खड़ा-खड़ा वह उसे देखता रहा।

विराट् वृद्ध के हाथ हाथी की सूँड-जैसे लग रहे थे और अभी नीचे लटके हुए थे।

अब इस अद्‌भुत मनुष्य ने सिर ऊपर उठाया और थोड़ी देर तक तन्मय दृष्टि से पूर्ण चन्द्र की ओर देखता रहा—देखता रहा और देखता रहा; देखता ही रह गया वह पूर्ण चन्द्र की तरफ कुछ काल तक।

फिर महापुरुष ने धीरे-धीरे चारो दिशाओं और आठों कोनो की ओर अपनी निगाहे घुमायी। इसमें भी कुछ वक्त बीता।

फिर वह झुका।

झुककर पालथी मार ली और जैकिसुन का माथा सूँघने लगा। उसी

गहराई से, जिस गहराई से बरसात की पहली फुहारों के बाद जंगली हाथी धरती को सूंघता है।

सूंघता रहा, बार-बार सूंघता रहा—नथने फड़क रहे हों, तृप्ति नहीं हो रही हो मानो।

और तब बाबा बटेसर जैकिसुन के कपार और छाती पर हाथ फेरने लगे।

जैकिसुन ने करवट बदल ली। उसका एक हाथ बूढ़े के पैर की उँगलियों को छू रहा था। नींद उसकी और भी गाढ़ी हो आयी।

बाकी दूसरे भी दो तरुण वहाँ सोये पड़े थे। परन्तु महापुरुष को मानो उनसे कोई प्रयोजन था ही नहीं। उन्हें एकमात्र जैकिसुन से मतलब था।

३

"घबराने की क्या बात है?" उस अद्‌भुत ने जैकिसुन की ठुड्डी छूकर कहा, "मैं तुम्हारे इस बरगद बाबा का अवतार हूँ; डरने की कोई जरूरत नहीं!"

बेचारे जैकिसुन की कुछ भी समझ में नहीं आया कि वह कहाँ है और किसकी बातें सुन रहा है। यह स्वप्न है या यथार्थ, इसका भी निर्णय वह नहीं कर पाया।

वैसा विशालकाय मनुष्य उसने आज तक देखा नहीं था। आल्हा-ऊदल, लोरिक और कुंवर विजई वग़ैरह वीरों की गाथाएँ सुन-सुनकर उनके बारे में जिस भारी-भरकम स्वरूप की धारणा होती है, इस वृद्ध का

आकार-प्रकार कुछ-कुछ उसी कोटि का लगा जैकिसुन को। बरगद बाबा को इस तरह सदेह सामने पाकर उमे प्रसन्नता भी बेहद हो रही थी।

इच्छा हुई कि नज़दीक में सोये पड़े साथियों को भी जगा दे, मगर फिर वह डर गया—क्या ठिकाना ! देवता ही तो ठहरे बरगद बाबा हमारे ! कहते हैं, देवताओं का मिजाज अजीब होता है। क्षण-भर में नाराज़ हो जायेंगे, क्षण-भर मे खुश···ना, अभी अकेले इनसे बातें करना अच्छा है। साथियों को सारी बातें पीछे बतला दूंगा···

बाबा दाढी पर हाथ फेरकर कहने लगा—

"बेटा, मैं न तो भूत हूँ, न प्रेत। मैं इम बरगद का मानव-रूप हूँ। जिस वनस्पतिराज की फलियों के वीज से मेरी उत्पत्ति हुई, उन्हें वनदेवी ने प्रसन्न होकर यह वरदान दिया था कि तुम्हारी सन्ततियाँ मनुष्य के हृदय की बातें अनायास समझ लेंगी और अपनी इच्छा के मुताबिक जब चाहे तब मनुष्य का रूप धारण कर सकेंगी। सो, मैं ठहरा इच्छारूप-धारी। मुझसे डरना या मेरे विषय मे किसी प्रकार की शंका करना बेकार है।"

इतना कहकर बरगद बाबा मुस्कराये और अपनी लम्बी उँगली से जैकिसुन के दाहिने गाल पर टकोरा दिया।

जैकिसुन अब आकर खिल पाया। एक प्रकार की गहरी प्रसन्नता का अनुभव कर रहा था वह। खुशी के मारे कुछ बोलने का जी कर रहा था उसका···मगर जैकिसुन के होंठ बन्द थे। चाहा कि होंठ खुलें और व्यक्त शब्दों मे वह कुछ बोले। बडी कोशिश की, काफी ज़ोर लगाया, आखिर होंठ उसके नही ही खुले।

यह क्या हो गया जैकिसुन को ?

बाबा बोला—"मेरे सामने तेरा मुंह नही खुलेगा बच्चा ! घबराने की जरूरत नही। मैं बहुत दिनों से तुझे मिलना चाहता था। आजकल जिन परेशानियों की वजह से तेरा चेहरा उदास रहता है, मुझे उनका पता है। नाहक तू मेरे लिए इतना परेशान है।"

जैकिसुन के जी को जरा तसल्ली हुई। परन्तु उसका विस्मय अब तक कायम था।

इतने में हल्के पंखों की फरफराहट और 'चें-चें' की कच्ची आवाज आयी। पत्तों की खड-खड ध्वनि टहनियों के स्पन्दन को पी चुकी, तो बाबा ने कहा —"सुनी यह आवाज तूने ?"

माथा हिलाकर जैकिसुन ने सहमति जतलायी।

"गोरैया का चूजा है यह। माँ अभी कल ही गोफन के ढेले का शिकार हो गयी। कल शाम को जब वह नही लौटी तो इसकी अविराम चें-चें-चूं-चूं ने मेरा ध्यान भंग किया। अब मैं ही उसकी माँ हूँ, मैं ही उसका बाप हूँ। कुल पन्द्रह दिनों की तो अभी बेचारे की आयु है···मैं गोरैया बनकर उसे दूध पिलाता हूँ, चोंच में चोंच डालकर दाने का मुलायम गूदा खिलाता हूँ; और रात-भर घोंसले में बिताता हूँ। समझा ? ठहर, मैं उसे ले आता हूँ; फिर निश्चिन्त होकर तुझसे बातें करूँगा···"

अच्छी बात है, जैकिसुन ने इशारे से बतलाया।

बाबा उठा और पेड की डालो में समा गया। थोडी देर बाद उसी तरह बाहर निकल आया। अब की वह गोरैया के बच्चे को गोदी मे लेकर बैठा।

फिर उसने कहना शुरू किया—

"पहले मैं तुम्हे यह बतला दूँ कि मुझे मृत्यु का भय किंचित् मात्र भी नही है। जीवन मुझे प्रिय नही हो, यह मत समझ लेना। भला, वह कौन है जिसको जीवन से विरक्ति हो ! परन्तु "बहुजनहिताय बहुजन-सुखाय लोकानुकम्पाय"···किसी सज्जन के मुँह से मैंने यह पद कभी सुना था। जीने के लिए जीना, जीना नही है, परोपकार के लिए जीना ही जीना है। अगर मेरी मृत्यु जन-साधारण के लिए लाभप्रद हो तो नही चाहिए मुझको यह जीवन। परन्तु दो-एक स्वार्थी धूर्त व्यक्तिगत हानि-लाभ की दृष्टि से मुझे देखते हैं, मैं कदापि नही चाहूँगा कि उनका मनोरथ पूर्ण हो···नहीं बेटा, बिलकुल नही। अक्षय वट भी धरती पर

ही हुआ करता है। जब तक लोग मुझे चाहेंगे, तब तक मैं अक्षय वट हूँ।"

जैकिसुन का कलेजा उछलने लगा यह सुनकर। उसके कानों मे बार-बार गूँजने लगा—अक्षय वट! अक्षय वट!! अक्षय वट!!! अक्षय वट!!!! अक्षय वट!!!!!

बाबा कह रहा था—

"भागते भूत की लँगोटी भली! जाते-जाते ये जमीदार सार्वजनिक उपयोग की इस भूमि को भी बेचे जा रहे हैं। पता है तुझे? इस जमीन की कितनी क़ीमत मिली है उन्हे? दो सौ रुपये। और मेरी क़ीमत क्या कूती उन्होंने?..."

बाबा ठहाका मारकर हँसा तो जैकिसुन चौंक उठा—ऐसा जोरदार ठहाका कि आस-पास के पाँच गाँव गनगना उठें!

"नही बेटा, और किसी ने नही सुना होगा इस ठहाके को। मत घबरा भाई, मेरी बातें भी सिर्फ तेरे कानों तक पहुँच रही है।"

अब जैकिसुन को तसल्ली हुई और वह ध्यान से सुनने लगा।

"मेरी क़ीमत कूती उन्होंने महज़ पच्चीस रुपये! राजा बहादुर का पुराना दीवान टुनटुना मल्लिक सवा दो सौ रुपये पर राजी हो गया, तो टुनाइ और जैनरायन ने चटपट रजिस्ट्री करा ली यह जायदाद...। हाँ, भाई! अब यह ज़मीन उन दोनों की खास जायदाद मे शुमार होगी न? बड़े पतित हैं ये लोग! मैं क्या बताऊँ, तू तो खुद ही इनको अच्छी तरह जानता है। मगर तू इन्हें मुझसे ज्यादा नही जानता होगा। बाईस साल की उम्र भी क्या कोई उम्र होती है रे? दरभंगा से उत्तर मौजा केउटी के नजदीक मेरा परदादा अभी तक मौजूद है। बताऊँ उसकी आयु? साढ़े तीन सौ साल की आयु है उसकी। हाँ बेटा! तेरी उम्र है अभी बाईस वर्ष की। टुनाइ पाठक पचास को पार कर गया है, जैनरायन भी पचपन से कम का नहीं होगा। पुश्त-दर-पुश्त इनकी लीलाएँ मुझे मालूम हैं। टुनाइ का दादा छीतन पाठक बेतिया के राजा का रसोइया था। काँसा और पीतल के बड़े-बड़े बर्तन उड़ा लाया था वह

बेतिया से। एक बार चाँदी का थाल लिये आ रहा था कि सीतामढ़ी में पकड़ लिया गया। बडी पिटाई पड़ी थी बेचारे पर। दरबार में हाजिर किया गया तो राजा बोला, "छोड़ दो, ब्राह्मण है।" तब से छीतन पाठक खेती-गिरिस्ती का अपना काम देखता रहा। लाख कोशिश करने पर भी बेटे को वह पढ़ा नही सका। फिर भी टुनाइ का बाप काफ़ी चतुर निकला। ज्यादा पढ़ा-लिखा न होने पर भी नेपाल के मोरड इलाके में वह ता-जिन्दगी डटा रहा और राणा-परिवारों की जी-हजूरी करके उसने धन का खूब उपार्जन किया। टुनाइ मैट्रिक में फेल कर गया तब से कही बाहर नही गया। लोगों में फूट डालकर वह नया-नया प्रपंच रचने लगा। यह व्यवसाय उसके लिए बड़ा ही लाभकारक सिद्ध हुआ। दस-पन्द्रह वर्षों से तो तू भी उसे देख रहा है। पिछली दफा किसानो में उभार आयी और जमीदार घबरा उठे। कांग्रेसवालों की पहली मिनिस्ट्री का जमाना था। मगर उस संघर्ष से ज्यादा फायदा किसने उठाया? इसी सियार ने उस आन्दोलन का सर्वाधिक लाभ हासिल किया। सोने के टुकडों से पाँच बीघा धनहर खेत सिर्फ़ ढाई सौ नगद देकर टुनाइ पाठक ने राजा बहादुर से लिखवा लिये। तीन पुश्त की अपनी सारी कमाई लगा-कर भी ऐसी जायदाद उसकी जितनी मामूली हैसियतवाला भला कहाँ पा सकेगा? ऐसा है यह जालिम!! जैनरायन की भी जीभ अब काफ़ी निकल आयी है, पहले उसके बारे में लोगों की अच्छी धारणा थी। माँ-बाप ग़रीब थे। चाचा मुंगेर में मास्टरी करता था। दर्जा आठ तक पढ़ा-कर उसने इसे रेलवे-सर्विस में डाल दिया। चार वर्ष जमालपुर, छः वर्ष मोगलसराय और पच्चीस वर्ष इलाहाबाद रहकर जैनरायन ने रेलवे में काफ़ी रकम बनायी। अब पेंशन क्या पा रहा है, टुनाइ पाठक की शागिर्दी कर रहा है। दोनों सुखी हैं, दोनों सम्पन्न हैं। दोनों के लड़के रुपया पीट रहे हैं, पर छछूंदर का दिल पाया है गधों ने! देख ही रहा है बेटा, कैसी दुर्दशा ये करा रहे हैं अपनी! इनका नाम ले-लेकर लोग कितना थूकते हैं! अगर इन्हें इस बात का पता होता! लेकिन ये तो

परले दर्जे के वेहया ठहरे, निन्दा-प्रशसा से डूबने-तिरनेवाले प्राणी कुछ दूसरी ही धात के हुआ करते है बच्चा !"

४

कू-ऊ ऽ ऽ···

कही से कोयल की आवाज़ आयी। जवाब मे किसी और कोयल की कूक तो नहीं सुनायी पड़ी, अलबत्ता पड़ोस की अमराई से झींगुरो की हल्की झकार आरम्भ हुई। कोयल दुबारा नही बोली, मगर झीगुरों की पल्टन अधिक-से-अधिक मुखर होती गयी—श्री ईं ईं ईं ईं ईं ईं···

क्षण-भर चुप रह लेने के बाद बरगद बाबा ने फिर अपना मुँह खोला—

"झीगुर एक तुच्छ कीड़ा होता है। सैकड़ों-हज़ारों की तादाद में जब ये एक-स्वर होकर आवाज करने लगते हैं तो एक अजीब समाँ बँध जाता है। झीगुरो की यह अखण्ड झंकार कई-कई पहर तक चलती रहती है। सामूहिक स्वर की इस एकाग्र महिमा के आगे मेरा मस्तक सदैव नत होता रहा है और होता रहेगा। शहनाई बजानेवालों में दो ऐसे लोग हुआ करते हैं जो केवल स्वर भरते जाते है—दम मारकर बारी-बारी से। बाकी उनमें तीसरा उस्ताद होता है। कभी-कभी साथ देने के लिए पट्ठा या नौसिखुआ भी रहता है। नाद-तान-लय-ध्वनि और राग-रागिनियों का आचार्य ठहरा उस्ताद ! उसकी फूंक और पिपही के छिद्रो पर नाचती उँगलियां शहनाई के सारे चमत्कार की जान हैं। ठीक है।

लेकिन स्वर भरनेवाले पहले दो जने न हों तो शहनाई का सारा मजा किरकिरा हो जायेगा। प्रकृति के मनोरम संगीत की जान है कोयल की कूक और पपीहे की 'पीउ-पीउ' आदि; मगर झींगुरों का लगातार स्वर संगीत की उस धारा के लिए सपाट मैदान का काम करता है। झींगुरों को घने-पुराने बागों की पकी-पोढ़ी छालवाली वनस्पतियों का सहवास बेहद प्रिय होता है। शकल-सूरत भी विधाता ने कीड़े की इस जाति को कुछ वैसी ही दी है। आम, जामुन, अमरूद, शहतूत वगैरह की छाल झींगुर को विशेष रुचिकर लगती है। सीलन-भरी नम जगहों में तूने इन्हें घर के अन्दर भी तो देखा होगा न?"

जैकिसुन ने माथा हिलाकर स्वीकार किया।

सचमुच झींगुरों की एकतार आवाज पूर्णिमा की उस नीरव रजनी को और भी गम्भीर बना रही थी। यों रात डेढ़ पहर से ज्यादा नहीं बीती होगी, परन्तु लगता ऐसा था कि निशीथ के क्षण आ पहुँचे। स्निग्ध-शीतल एवं धवल-पाण्डुर आलोक धरती को दिग्-दिगन्त तक उद्भासित कर रहा था। नीचे पृथ्वी, ऊपर आकाश—दीप्त प्रकृति का उदार परिवेश वह क्या था, ग्रीष्मान्त की रजनी का सौभाग्य-शृंगार था मानो...

रुपउली बड़ी बस्ती नहीं थी। तीन सौ परिवार थे, खानेवाले मुँहों की तादाद थी ढाई हजार—अलावा पशुओं-पक्षियों और कुत्तों-बिल्लियों के। ब्राह्मण थे, राजपूत थे, भूमिहार थे। बाकी आबादी ग्वालों-अहीरों, धानुकों और मोमिनों की थी। दो घर चमारों के थे, एक परिवार था पासियों का। बड़ी जातिवालों के पास निर्वाह-योग्य जमीनें थीं। ग्वालों और मोमिनों के भी थोड़े-कुछ खेत थे। साठ प्रतिशत परिवार ऐसे थे जिनका गुजारा मजदूरी पर निर्भर था। वे काम के लिए पड़ोस के कई गाँवों तक चले जाते, पचीस-पचास आदमी शहरों में मुनीगीरी या दूसरे मामूली काम करके यहाँ अपने परिवारों की जीविका चलाते थे। गन्ने का सीजन आता तो दस-पाँच जने चीनी के कारखानों

में अस्थायी काम पा जाते। इस इलाके में दस कोस के दरम्यान ही दो शुगर-फैक्टरियाँ थीं। छोटी-छोटी दो ब्रांच-लाइनों को मिलानेवाला सकरी-जैसा रेलवे-जंकशन था। हफ्ते में दो-दो बार जुटनेवाले तीन-चार पेठ थे। खानदानी जमींदारों की सतगामा और परसादीपुर-जैसी दो बड़ी बस्तियाँ थीं। चार कोस पर दरभगा-जैसा शहर था, छः कोस पर मधुवनी जैसा कस्वा था। एक मिडिल स्कूल था, संस्कृत की एक पाठशाला थी—मौजे रुपउली की सीमा के अन्दर ही। आधा कोस के फ़ासले पर चार वर्ष पहले हाई स्कूल भी खुल चुका था। बड़ी जातवालों के लड़के काफ़ी तादाद में पढ़ रहे थे। मैट्रिक पास करके दसियों तरुण कर्म-क्षेत्र में प्रवेश कर गये थे। दो वकील, दो प्रोफ़ेसर, एक डिप्टी मजिस्ट्रेट, एक फ़ॉरेस्ट-ऑफ़ीसर, एक लोको-इंजीनियर और एक इन्कमटैक्स का जिला-अफ़सर...रुपउली के आठ सपूत बड़े ओहदों पर विराजमान थे। मगर इन बड़े बाबुओं का गाँव के साधारण जीवन से नाम-मात्र का सम्पर्क था। दुनाई पाठक का लड़का एम० ए० और वकालत का इम्तिहान पास करके जज ससुर की सिफारिश से इन्कमटैक्स का जिला-अधिकारी हो गया था। जैनरायन का बेटा लोको-इंजीनियरिंग की ऊँची डिग्री पाकर जमालपुर के रेलवे-वर्कशाप में चार सौ की तनख्वाह पर लग चुका था। ऊँची और महँगी शिक्षा पा लेने के बाद इन सभी की आँखों पर मोटी-मोटी ऐनकें पड़ गयी थीं, मिजाज चढ़ गया था और नाक लम्बी हो आयी थी। कल-परसों वे जिनकी गोदियों में खेले थे, आज उनकी तरफ भर-नजर देखना तक शान के खिलाफ था। ऊँचे ओहदों पर होने से वे आम लोगों की निगाह में अपने घरवालों का रुतबा बिना किसी कोशिश के बढ़वा चुके थे। किस गरीब की जमीन बिकनेवाली है, कौन निपूता कितनी जायदाद छोड़कर मरा है, नाबालिग लड़केवाली किस विधवा की क्या हैसियत है, शादी या श्राद्ध के मौकों पर कौन-सा काश्तकार कितनी रकम कर्ज लेगा, मुकदमा लड़नेवाले कौन-कौन-से लोग अदालती खर्च के लिए

अपने खेतो को रेहन रखना चाहते हैं—इस प्रकार के तथ्यों की आवश्यक जानकारी के अतिरिक्त गांव की बाकी बातों में उन्हे जरा भी रस नही मिलता। छठे-छमाहे गाँव-घर आ गये तो मेहमानों की तरह बैठकों में विराजमान रहते। गाँव के मामूली आदमी के सामने इन बाबुओं के दिल की परत नही खुल पाती। न किसीसे कहा-सुनी, न राम-राम, न नमस्ते। लगता था ऐसा कि किसी को वे कुछ नहीं समझते।

रुपउली की नयी पीढ़ी के लोग गाँववालो का अपना लेखा-जोखा करते वक्त आम तौर पर उन उच्च शिक्षित बाबुओं की शुमार इसी से नही करते थे। हाँ, पडोस के गाँव का कोई कभी शिक्षितों का प्रसंग छेड़ बैठता फिर तो रुपउलीवाले भेद-भाव की आपसी कटुता को परे हटाकर अपनी बस्ती के मौजूदा रत्नो की पूरी सूची पेश करते।

तो फिर ?

तो फिर जैकिसुन ने सिर हिलाकर स्वीकार किया कि घर के अन्दर भी झींगुर हुआ करते हैं और वह उनसे अच्छी तरह वाकिफ़ है। लेकिन अब बरगद बाबा के मुँह से पुराने जमाने की बातें सुनना चाहता था वह। टुनाई पाठक और जैनरायन के बारे मे बाबा ने अभी जो-कुछ बतलाया था, उसका अधिकाश सचमुच जैकिसुन को मालूम नही था।

पता नही, कितनी बातें बाबा को मालूम होगी! पता नही, पिछले सौ वर्षों मे इस इलाके पर क्या-क्या गुजरा होगा! पता नही, जैकिसुन के परदादा और दादा किस तरह अपने जीवन बिता गये हैं!

इस प्रकार की बहुत सारी बातें उस तरुण के दिमाग मे चक्कर काट रही थीं। झींगुरों की एकरस-एकतार आवाज की तरफ उसका ध्यान था ही नही। उसका सारा ध्यान तो जिज्ञासा पी गयी थी···

बाबा ने जैकिसुन के दिल की बात ताड ली। वह बोला—

"अब मैं तुझे अपनी कहानी सुनाऊँगा। आपबीती भी तो जगबीती का ही एक अश होता है न ? तो, ले, सुन ध्यान लगाकर!···

"मेरी आयु एक सौ तीन वर्षों की हो गयी है। हमारी जाति की वनस्पतियों के लिए यह कोई अधिक आयु थोड़े है बेटा ? बिलकुल नही ! पडितों को कहते सुना है कि कलिकाल सबकी आयु पी गया है। पी गया होगा कलिकाल चर-अचर सबकी आयु, परन्तु बरगद की उम्र अब भी सैकड़ों साल की हुआ करती है। पांच-पांच सौ वर्षो की आयुवाले वट वृक्षों की चर्चा मैंने सतों के मुखकमल मे सुनी है। ढाई-सौ तीन-सौ वर्षों के बरगद तो तुझे अपने इस तिरहुत देश मे भी कई जगह मिल जायेंगे। पारा-डीह के बूढे बटेश्वर का जिक्र मैं कर ही चुका हूँ।...

"यहाँ से दो कोस पर दक्षिण की ओर शिवाजी का एक पुराना मन्दिर था। सुना है कि उसी मन्दिर के पास पीछे नया मन्दिर किसी श्रद्धालु विधवा ने बनवा दिया है। पुराना मन्दिर तो अच्छी तरह याद है। बाहर-बाहर उसका सुर्खी-चूना झड़ गया था। बेटा, उन दिनों सीमेण्ट नही हुआ करता था : पक्की ईंटो का चूरन बना लेते थे। उसमें चूना और बालू मिलाकर गारा-लेवा तैयार होता था। उसी से ईंटों पर ईंटें बैठाया करते थे राज लोग। अब भी अपने देहातो मे सुर्खी-चूने का गारा काम में आता था। सीमेण्ट हासिल करने मे पचास झंझटें पड़ती है। तेरा बाप तो कच्ची ईंटो की भीतें खड़ी कर गया है। है न ?"

जैकिसुन ने पलकें उठाकर समर्थन किया।

"उस मन्दिर का बाहरी गारा झड़ गया था। अन्दर का पलस्तर अभी बदस्तूर कायम था : पीछे नुक्कड पर मन्दिर में मामूली-सी दरार पड़ गयी थी। एक बार हथिया-नक्षत्र लगातार सात दिन, सात रात हल्के-हल्के बरसता रहा। कभी पुरवैया, कभी दोरस बयार—कभी हवा बन्द भी हो जाती थी। मतलब यह कि पानी की बारीक कनियों के झोंके मन्दिर की उस दरार के अन्दर पहुँच गये और तह की फटी जोड़ों मे मौजूद सुर्खी-चूने को भली-भाँति भिगो आये।

और तब, दस रोज बाद मैं पैदा हुआ।"

जैकिसुन की आँखों के कोये फैल गये—आश्चर्य के मारे उसकी टकटकी बँध गयी।

बाबा ने कहा—

"मन्दिर से जरा हटकर बरगद का एक भारी पेड़ था। उसके बरोह धरती को कब के छू चुके थे और बाँकी-पतली डालों में विकसित होकर फिर से ऊपर उठ गये थे। वह वृक्षराज इस तरह अपनी बीसियों बरोह धरती में धँसाकर अविराम रस ग्रहण कर रहा था। मन्दिर बनते समय वहीं कई ढेकियाँ खड़ी की गयी होंगी और मजदूरिनों ने उन्हीं से चूर-चूरकर ईंटों का चूरन तैयार किया होगा। कई वर्षों तक यह सिलसिला चला होगा, मन्दिर के निर्माण में निश्चय ही कई वर्ष लगे होंगे। ईंटों के चूरन की सुर्ख ढेरी पर बरगद की फलियां पक-पककर गिरती होंगी। गारा-लेवा तैयार करते वक्त दो-एक वट-बीज भुक्कड़ की उन ईंटों के जोड़ में आ गये। न जाने मेरा जीव उस क़ैद में कब तक पड़ा रहा। यदि दरार न फटती और हस्त-नक्षत्र की सुदीर्घ वर्षा गारे की तह को न भिगोती तो मैं आज कहाँ होता?"

क्षण-भर के लिए अपने-आपमें डूब गया बरगद बाबा। फिर लम्बी साँस ली। गोरैया के बच्चे ने पंख फड़फड़ाये। बाबा ने स्नेहमय हथेली उस क्षुद्र प्राणी पर फेरी और कहा—

"यह रही मेरी जातक-कथा! समझा?"

अब जैकिसुन का विस्मय हट चुका था। उसकी दृष्टि स्वाभाविक सी लगती थी। कहानी का जादू अपना असर डालने जा रहा था अब···

बाबा बोला—"संयोग की बात थी यह। दूसरी तरह भी मैं पैदा हो सकता था न? मगर मुझे जरा भी तकलीफ़ नहीं हुई। दरार के अन्दर प्रकाश भी पहुँचता था, हवा भी पहुँचती थी। पानी की ही कमी थी, सो भगवान की ऐसी दया हुई उस बार कि कुछ मत पूछ!···

"ढाई-तीन महीने में तो मैं दो बित्ते का हो गया। बीज से निकला

तो सफेद धागे का जौ-भर का छोर-सा था। यो तो दरार क्या थी, वह मेरे लिए पूरी जेल थी। सब ओर घेरा, सभी ओर अवरोध। लेकिन एक बार जब मैं बीज के खोल से निकल आया, फिर भला यो ही हार मान लेता किसीसे ? रुकावटें थी, विघ्न थे। ठीक है, पर राह भी तो निकल आयी थी आखिर! उन दिनों झारखंड की खानों का पत्थर-कोयला यहाँ तक नही पहुँचा था। अन्दर मोटे-मोटे लक्कड डालकर कच्ची ईंटों का भट्टा चिनते थे लोग। काठ की आग से ही ईंटे पकती थी। मेरा जीवन जिस गारे के हवाले था, वह मामूली आँच की अध-पकी ईंटो के चूरन का तैयार किया हुआ था। यह तो मेरा सौभाग्य था, वरना कही कड़ी आंच मे पकी ईंटों के चूरन के पल्ले पड़ता तो मैं गर्भ के अन्दर ही झुलस चुका होता, या कि मन्दिर के भीतरी भागों मे कही पड़ा होता तो भी न जाने बाहर आने के लिए कितने युगो की प्रतीक्षा करनी पड़ती!

"परन्तु मेरे अच्छे दिन तो अभी आगे आनेवाले थे। तेरे परदादा को मैं अपना सबसे बड़ा प्रतिपालक समझता हूँ। उसने मुझे इतनी अच्छी जगह न दी होती तो उसी जीर्ण-शीर्ण मन्दिर की फटी कमर से मैं चिपका रह जाता; ठिगना-ठूँठा कुबड़ा-बौना ढांचा लिए विधाता को कोसता रहता...

"तो वर्ष-भर मुझे उस खोह मे तपस्या करनी पडी। तब तक मेरा शरीर दो तनों मे विभाजित हो चुका था। छड़ी की तरह पतले-पतले और हल्का पीलापन लिये हुए सफेद चिकनी मिट्टी की सूरत वाले दो तने, बस। पत्तो के लिए भला उस दरिद्र दरार मे अवकाश ही कहां था! मुश्किल से तीन-चार पत्ते अपने लिए वहाँ जगह बना सके थे; बीमार और सिमटी-सिकुडी रगोवाले भद्दे पत्ते! छि.! आज उनकी याद तक नागवार मालूम होती है! पौधा ही ठहरा न! बढ़ना तो मुझे था ही! लेकिन अनेक प्रकार की रुकावटो से मजबूर होकर उन आरम्भिक दिनो में मेरी जीवन-शक्ति एकमुखी बन गयी, यानी शरीर पतला व बेहद

लम्बा होता गया। शुरू-शुरू में दो तने थे। आगे आकर एक टेढ़ा हो गया क्योंकि झँवाई हुई एक कुबड़ी ईंट ने उसे बुरी तरह दबाये रखा।

"अगले साल ऐसा हुआ कि मन्दिर की मलिकाइन से बैजनाथ-धाम का एक पंडा मिलने आया। परिक्रमा के समय मन्दिर की पिछली दीवार के कोने पर उसने यह दरार देखी तो मुँह से खेदपूर्वक निकला—"शिव ! शिव ! शिव !! शिव !!" अवश्य पंडे ने जाकर विधवा जमीदारिन से कहा होगा। तभी तो चार-छ दिन बाद दो राज मन्दिर की मरम्मत करने आये थे। उनकी राय हुई कि भीतर से ईंटें हटाकर ही दीवार को पुख्ता किया जा सकता है, ऊपर से गारा-चूना डालकर थोथ-थाप करेंगे तो फिर दरार हो जायगी। ब्राह्मणी की श्रद्धा उमड़ आयी और दीवार को पुख्ता कर दिया गया। साथ ही मुझे भी उस कैद से छुटकारा मिला।

"तेरा परदादा शिवजी का भारी भक्त था। वह हर सोमवार को यहाँ से चलकर उस मन्दिर तक पहुँचता। जीवन में दूसरी तरह के उलट-फेर उसे बरदाश्त थे मगर हफ्ते में एक रोज, और वह भी सोमवार को, बाबा बालेश्वरनाथ पर लोटा-भर जल ढारने के नियम में किसी प्रकार का व्यतिक्रम उसको सह्य नहीं था। सुना है, छब्बीस वर्ष की आयु के पश्चात् उसने यह संकल्प लिया था और जीवन-पर्यन्त इस पर डटा रहा।

"तेरा परदादा भैंसों का बड़ा शौकीन था। मैं यहाँ लाया गया तो उसकी उमर तीस साल की थी। उन दिनों वह चार भैंसों का मालिक था। कहते थे, एक बार गुजराती नस्ल की उसकी एक प्यारी भैंस बीमार पड़ गयी। मरने-मरने को हो गयी। ओझा-गुनी आये। दवा-बीरो होता रहा। बड़ी दौड़-धूप हुई, खर्चा भी काफी किया। मगर गुजराती का हाल नहीं सुधरा।

"बाकी सब तरफ से निराश होकर तेरा परदादा बाबा बालेश्वरनाथ के सामने जाकर लम्बा पड़ गया। रोती-भर्राती आवाज में गुहर मचायी—"दुहाई बम्भोलेनाथ की ! अब तेरा ही एक आसरा है। जब तक

गुजराती निरोग नही होगी, तब तक मैं तेरे सामने से नही हटूँगा!!!"

"मन्दिर के बाहर, शिवजी के सामने वह पूरे आठ पहर तक उसी तरह लेटा रहा और रोता-सिसकता रहा। अन्त मे घड़ी-दो-घड़ी की खातिर नींद-सी आयी तो सपने मे भभूत रमाये हुए जटाधारी शिवशंकर दिखायी पड़े। लगा कि बभोलेनाथ ने दाहिने पैर से उसके सिर में ठोकर मारी और कड़ककर कहा—जा, भाग! भैंस तेरी चरने निकल गयी है...

"वह चट से उठकर खड़ा हुआ और पुजारी से सपने की बातें बतलाईं।

"पुजारी ने शिवजी के ऊपर का धतूरे का एक फूल उठाकर उसे दिया और पीठ पर हाथ फेरते हुए बोला—'जाओ राउत, भोलानाथ तुम पर प्रसन्न है। ऐसा सपना यहां दस-बीस वर्षों मे कोई एक-आध ही बड़भागी देखता है! जाओ, तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हुआ...'

"बात ठीक ही थी। भैंस चरने तो नही निकली थी मगर दालान के आगे आकर खड़ी-खड़ी पागुर कर रही थी।

"वह खुशी के मारे गुजराती के गले से लगकर देर तक रोता रहा।

"सुना है, तभी से तेरा परदादा हर सोमवार को बालेश्वरनाथ पर जल ढारने जाता था।

"वह बहुत दिनों से बरगद का एक बिरवा खोज रहा था। मुझ पर उसकी दृष्टि अवश्य थी, किन्तु शिवजी के मन्दिर का एक अंग समझकर मेरी ओर से वह निरीह-निरपेक्ष हो गया था। जीर्णोद्धार होने लगा तो कारीगरों ने मेरे दुर्भाग्य के प्रति गहरी सवेदना प्रकट की। और तो वे कर ही क्या सकते थे, मन्दिर के पिछवाड़े खुली जगह में छोटा-सा एक गढा खोदकर उसमे मुझे उन्होंने लगा दिया। दरार के अन्दर दूर तक मेरी रगें पहुँच गयी थी। मुझे स्वयं ही विस्मय हो रहा था कि नीरस-निचाट उस खोह मे आखिर वह कौनसी सजीवनी समायी हुई थी जिसकी वजह से मैं निष्प्राण नही हो पाया! वहाँ गारा-चूना ही नही, ईंटें तक मेरी नसों के घेरे में आ गयी थी। बड़ी मुश्किल से मुझे उनसे

छुड़ाया गया था।

"तेरे परदादा ने एक बार डरते-डरते पुजारी से मेरे बारे में बातें की थी।

"हुआ यह कि पुजारी का खसी एक बार मेरे टूसों को चबा गया। दिन-भर फुनगी से दूधिया रस बहता रहा, समझ ले कि आँसुओं की झड़ी लग गयी। खसी पुजारी का दुलारा था, मुझे वहाँ कोई नहीं पूछता था। बाबा बालेश्वरनाथ के दरबार में पास-पास पाँच बरगद थे, दस पीपल थे और पाकड़ थे दो-तीन। दो-तीन बड़े-बड़े पेड़ आम के भी थे। पञ्चवटियों की उस गुलजार दुनिया में फिर मुझ-जैसे अदना बिरवा की किसीको क्यों परवाह रहती? बार-बार जी में आता कि किसी तरह सूख-साख जाऊँ तो हमेशा के लिए छुटकारा मिले। अपमान और ग्लानि के जीवन की अपेक्षा मृत्यु का कहीं अधिक श्रेय है···परन्तु चार ही दिनों में फिर अपना कायाकल्प देखकर आप ही मैं चकित रह जाता। वाह, क्या खूब! दीपशिखा के समान लाल-लाल टूसों से मेरे शरीर की सन्धियाँ उल्लसित हो उठतीं और रग-रग में जीवन की लालसा बिजली भरने लगती। तेरे परदादा ने आखिर मेरे चारों ओर ऊँची बाड़ लगा दी। साफ़ था कि उसके हृदय,में मेरे लिए ममता घर बना चुकी थी। खुलकर एक दिन उसने पुजारी से कहा—"महाराज, यह बिरवा मुझे दे दो। मैं इसकी सेवा जी-जान से करूँगा···"

"दही-वही तो राउत तुमने बहुत दिनों से इधर नहीं खिलाया!'— एक-पर-एक दबे होंठों को सिकोड़कर पुजारी ने कहा; आँखें नचा ली।

"हाथ जोड़कर तेरा परदादा बोला—'लो महाराज, कल ही आ जायगा।'

" 'तो फिर कल ही अपना बिरवा तुम ले जाना राउत!' पुजारी ने हँसकर कहा।

" 'नहीं जी, महूरत अच्छा पड़ेगा तब ले जाऊँगा,' प्रसन्नता के भावों को दबाकर राउत बोला।

"मिट्टी के नये बर्तन मे तीन-एक सेर दही और अलग सेर-भर घी अगले ही रोज पुजारी की सेवा में पहुँच गया।

"तीन दिन बाद शुभ मुहूर्त निकल आया और राउत मुझे यहाँ ले आये। थाला काटकर खाँचे मे रखा गया, रस्सी के सहारे बाँस मे लटकाकर दो जवानों ने मुझे ढोया था। राउत खाली हाथ पीछे-पीछे आये थे।

"पहले ले जाकर मैं तेरे दालान की ओरियानी मे रखा गया। बैठक के बरामदे मे छप्पर की छाँह थी। भादों की धूप कैसी करारी होती है! मेरे बारे मे राउत को डर था कि धूप मे रखा रहूँगा तो कुम्हला जाऊँगा।

"तेरी परदादी ने घड़े-भर दूध से मुझे वही नहलाया, अपने हाथों से। पीछे, मेरे तने पर भिगोये चावलों की पीसी हुई पीठी की थापें पड़ी। अधेड़ महिला के हाथ की हुलास-भरी हथेली का वह प्रथम स्पर्श मैं अब तक नही भूल सका हूँ। उस परस मे माँ का नेह-छोह था, बड़ी बहिन की ममता थी, दादी और नानी के आशीर्वाद थे। अरे, क्या नही था उसमे! सब-कुछ था बेटा!

"और पीठी की थापों पर तेरी परदादी ने थोड़ा-थोड़ा सिंदूर भी लगा दिया। तब राउत ने तीरा और मधुरी के चटकीले फूलो की लम्बी माला मेरे गले से लपेट दी। मेरा तना छड़ी-सा पतला था। वह माला इस गले मे बीसियों लपेटें खा गयी थी…मेरी रग-रग एक अनोखी तरावट महसूस कर रही थी।

"इस गाँव मे उन दिनो एक भारी पडित थे। उमर नब्बे साल की हो चुकी थी। अपने जमाने के पचासों विद्वानों को उन्होने शास्त्रार्थ मे पछाड़ा था। नगद और दुशाले दे-देकर बीसियो राजा-महाराजा उनका सम्मान कर चुके थे। वादविवाद का पूर्वपक्ष हो या उत्तरपक्ष, प्रतिद्वन्द्वी विद्वान् देर तक उनके सामने नहीं टिक पाता। समकालीन पण्डित-मण्डली उनसे बेहद आतंकित रहती थी। यह आतंक पीछे श्रद्धा मे बदल गया

था शायद । विद्वानों की परिषद् ने आखिर एकमत होकर नैयायिकप्रवर चन्द्रमणि मिश्र को 'तर्क-पंचानन' की उपाधि दी थी। तर्क-पंचानन महाशय अब कहीं जाते-आते नहीं थे। दौहित्र था जो कि हथुआ के महाराज का राजपण्डित था। दूर-दूर से राजा-महाराजा और धनी-मानी लोग यदा-कदा अब उनके दर्शनार्थ आया करते। कई दरबारों की तरफ से पण्डितजी के नाम पर दान-दक्षिणा की छोटी-मोटी रकमें बँधी थीं। आसपास के पचास कोस के इलाकों में फैले हुए विद्वान् लोग तर्क-पंचानन से परामर्श ले जाते। तेरा परदादा छोटा था, तभी से उनका भगत रहा। मुझे पीछे मालूम हुआ कि राउत ने दस वर्ष तक पण्डितजी की सेवाटहल में बिताये थे। वह अब भी घड़ी-आध घड़ी रोज उनके पास जाता और देह-हाथ-जाँघ चाँप-चूँप आता···राउत अब तक निपूता था, सन्तान के बारे में वह निराश हो चुका था। बरगद का बिरवा लगाकर अपना नाम जीवित रखने की उसकी लालसा इसी कारण दिन-दिन प्रबल होती आयी थी। राउत के मन की व्यथा से बूढ़े पण्डितजी वाक़िफ़ थे। उसने पण्डितजी से प्रार्थना कर रखी थी—"सरकार! मैं बरगद का जो बिरवा लगाऊँगा, उसे आप छूकर आशीर्वाद दीजियेगा; यही समझ लीजिएगा कि अपने बुद्धन के बेटा के कानों मे आप मन्त्र दे आये···" राउत को तर्क-पंचानन अपने ही पोतों की तरह सगा समझते थे। उसकी यह प्रार्थना उन्होंने मान ली थी।

"सो उस रोज तिपहरिया की ढलती बेला मे तेरा परदादा तर्क-पंचानन महाराज को खटोले पर उठवा लाया।

"अँगनई में खटोला रखा गया। पण्डितजी उस पर जैसे बैठे आये थे, उसी तरह बैठे रहे। मैं जिस खाँचे में था, उसे उठाकर खटोले के बिलकुल करीब रख दिया गया। टोले-मुहल्ले के सभी उमर के औरत-मर्द हमे घेरकर खड़े हो गये।

"राउत दोनों हाथ जोड़े, धोती का अद्धा गले मे डाले, विह्वल मुद्रा मे खड़ा था—ठीक उसी तरह जिस तरह बकरे की बलि के वक्त दश-

भुजा दुर्गा के सामने यजमान खड़ा रहता है…

"पण्डितजी ने फुनगीवाली मेरी टहनी दाहिने हाथ की उँगलियों से पकडकर झुका ली :

"फिर उनके होठ हिलने लगे। बिना दाँतों के मुँह मे आहिस्ते-आहिस्ते चलती-फिरती जीभ बता रही थी कि तर्क-पचानन कुछ मन्त्र या श्लोक-जैसी पंक्तियों का पारायण कर रहे हैं। मुझे लगा कि उस महावृद्ध की काँपती-हुई उँगलियों मे से होकर लम्बी आयु और स्वास्थ्य मेरे अन्दर प्रवेश कर रहे हैं। मृदु और मधुर कम्पनो से मेरा एक-एक पत्ता चंचल हो उठा। रग-रग मे नवजीवन की उछलती ताजगी भर गयी।

'पण्डितजी की भौहों के बाल पक-पककर न जाने कब के पीले पड़ चुके थे। गाल बेहद पोपले थे। धँसी-धँसी आँखों के अन्दर पुतलियाँ देखकर बिल मे पड़ी कौडी याद आती थी। लगातार सुँघनी लेते रहने के कारण मूँछों का बिचला हिस्सा और नाक के पूडों का छोर भूरा पड़ गया था। गंजी-पोली चाँद मानो चिढकर चोटी के चन्द बालों को बिलकुल चर गयी थी। बदन का ढांचा ही कुछ ऐसा हो गया था कि गोश्त की सत्ता लुप्तप्राय थी। गेहुँआ चाम से मढ़ी हड्डियो का वह ठट्ठर मृत्यु के देवाधिदेव यमराज के लिए खुली ललकार था मानो।

"उनके गले में सफेद मलमल की हल्की चादर पड़ी थी, पहनावे मे पीले रग की धोती थी।

"तर्क-पचानन का समूचा माथा हिलता-डुलता रहता था। स्वर भी काँपा करते थे।

"काँपती हुई आवाज़ मे पण्डितजी ने राउत से कहा—'ले जा, अब इसे रोप आ बुधना !'

" 'जी मालिक !' पुलकित ध्वनि मे तेरा परदादा बोला और लोग मुझे अलग ले गये।

"राउत ने बूढ़े पण्डित के पैरो पर माथा टेक दिया।

"उसके सिर पर तर्क-पचानन के कांपते हाथ की अस्थिर हथेली फिर गयी। कानों में कम्पित स्वर गूंज गये --'नाहक मन छोटा करता है रे! अभी हुआ क्या है? तीस-बत्तीस-वर्षों की तो तेरी आयु है··· तू अवश्य पुत्र-पौत्र का मुख देखेगा···और यह बरगद भी अल्पायु नहीं, बल्कि शतजीव-चिरजीव होगा।···"

"राउत अब भी मत्था टेके हुए था। पण्डित ने ठुड्डी पकड़कर उसके चेहरे को ऊपर उठने के लिए बाध्य किया।

"तेरा परदादा आंसू बहाये जा रहा था---निपूता होने का पछतावा पानी-पानी होकर आंखों के रास्ते निकला जा रहा था या कि कुछ और बात थी, भगवान जाने! राउत की यह विह्वलता मुझे भी भीतर-भीतर रुला रही थी।

"तब राउत घर के अन्दर गया और गाढ़ी धोतियों का पीला जोड़ा लेता आया। धोतियां तह नहीं की हुई थीं, पल्लों में चुन्नटें डालकर नफासत से मरोड़ी हुई थीं। दोनों धोतियां महापण्डित के चरणों में निवेदित करके वह एक ओर खड़ा रहा।

" 'इनकी क्या जरूरत थी रे?' उन्होंने रुखाई से कहा तो तेरा परदादा दोनों हाथ जोड़कर बेहद झुक गया और होंठों की उसकी हदबन्दी को तोड़कर मुश्किल से ये शब्द बाहर निकले---"मालिक, ढाका-राजशाही की पीताम्बरी और नागपुर की रेशमी धोतियों का अम्बार लगा है आपके घर में, मेरी भला क्या औकात है कि हुजूर के पैरों पर अपना माथा भी रख सकूं? मगर कहावत है कि 'बभोला को आकधतूर!' जिसकी मोल कौड़ी भी नहीं, मदार और धतूर का वही फूल शंकरजी को पसन्द आता है; कमल, चम्पा, जुही, केवड़ा और हरसिंगार के फूल शिवजी के लिए जरा भी आकर्षण नहीं रखते। मालिक, इन्हें आप जरूर स्वीकार करें···"

"राउत की इस भावुकता के आगे तर्क-पचानन सर्वथा मौन हो गये।

"उधर उनका खटोला उठा और इधर मेरा खाँचा उठा। सूर्यास्त होने से पहले ही नयी जगह में बिरवा लगाने का मुहूर्त था न !

"यहाँ, रजबाँध के किनारे इस मैदान में गढा खोदकर पहले ही से तैयार था। खाँचा-समेत मेरी जडों का थाला उसमें डाल दिया गया। पूरी ताकत लगाकर राउत ने अपनी बाँहों मे मुझे उठा लिया, तब गढे मे डाला था। औरों ने भी हाथ लगा रखे थे। हरे-हरे दो बाँस काट लाये गये थे। एक-एक बाँस को चीर-फाडकर आठ-आठ लम्बी लचकीली पट्टियाँ निकाल ली गयी। उन्ही पट्टियो से टट्टर बुना गया था—गोल टट्टर, बाहर से हरा और अन्दर से सफेद। ऐसी हवादार और नफीस बाड़ के अन्दर रहने का सौभाग्य कभी प्राप्त होगा, अपने राम ने सपने में भी इस सुन्दर सुरक्षा का खयाल नहीं किया।

"यह लम्बा-चौड़ा रास्ता राजा की सवारी के लिए कभी बनाया था, इसीलिए इसका नाम पड गया रजबाँध···समझा न ?"

"हाँ"—जैकिसुन का माथा हिला।

बटेसरनाथ ने कहा—"बेटा, घबरा तो नही रहा ?"

तरुण श्रोता ने इशारे से बतलाया—"नही !"

"नीद आ रही होगी"—बुजुर्ग ने ठुड्डी मे उँगली लगाकर पूछा—"दिन-भर का थका है न !"

जैकिसुन का माथा फिर निषेध की मुद्रा में हिला। उसकी थकावट और नीद आज न जाने कहाँ उड़ गयी थी। बस्ती रुपउली में खूब सोनेवाले चार-छः बहादुर जो थे, उनमें एक जैकिसुन की भी शुमार होती थी। माँ या बहिन या दुलहिन या कोई दूसरा झकझोर-झकझोरकर उसे उठाते, तभी उसकी आँखें खुलती। झकझोरकर नीद से जगानेवाला कोई न होता तो सोलह-सोलह घटे खीच ले जाता जैकिसुन। यों दिन-दुपहर का खाना खाकर तीन घण्टे और रात को सात घण्टे वह सोता ही···और आज तो दिन-भर जैकिसुन इतना ज्यादा भटका था,

सडकों की इतनी अधिक धूल फाँकी थी आज कि तन-मन दोनों ही काबू से बाहर आ गये थे। मगर इस वक्त बाबा बटेसरनाथ के सामने वह अपने को बिलकुल ताजा-दम महसूस कर रहा था।

बाबा कहने लगा :

"पहले यह बाँध खूब चौडा था, अठारह हाथ था, नौ गज कम नहीं हुआ करते! अब आधा रह गया है। किनारे-किनारे जिनकी जमीनें पडती हैं, कुदालधारी उन चतुर किसानों की कृपा से इस पुराने राज-मार्ग का कलेवर दिन-पर-दिन कृश होता आया है। छोटा खेतिहर होता एक-आध तो उसकी आँख मे उँगली डालकर कोई बता भी देता, और वह मान भी लेता अपना कसूर। लेकिन बड़े किसानों को कौन नाराज करे? क्यों साँप के बिल मे कोई अपना हाथ डालेगा? और बडे किसान एक-दूसरे की पोल जानते है, इसीसे वे एक-दूसरे के लोभ-लाभ के प्रति काफी हद तक सहनशीलता को पकडे रहते हैं।

"राजा की सवारी किसी जमाने मे इस रास्ते गुजरती होगी। आज-कल तो बुरा हाल है बेचारे का। रुपउली से लेकर धमियापट्टी तक, कोस-भर कच्चा—समझ ले डेढ मील! बस! उत्तर की ओर फिर भी यह रास्ता-जैसा लगता है, मगर दच्छिन की ओर तो आगे चलकर पतला होता गया है, धमियापट्टी के क़रीब जाकर इस रजबाँध ने बिल-कुल एक मेड़ की शकल अख्तियार कर ली है···जमाने का जादू है यह भी बाबू!

"रजबाँध से पूरब डेढ कोस का सपाट मैदान यह देख ही रहा है तू! बडी उपजाऊ है यह सारी जमीन। बीचों-बीच निचली सतह के जो खेत हैं, बरसात के मौसम मे वहाँ आज से पचास वर्ष पहले झील लहराया करती थी। बाहर वाले उसे 'बुढिया टाल' कहा करते थे।

"भादों का महीना था। वर्षा काफी हो चुकी थी। खेतों में धान के पौधे लहरा रहे थे। मुझे अब ऐसी जगह मिली थी जहाँ मैं खुलकर साँस ले सकता था। आस-पास कोई बड़ा पेड़ नहीं था। हाँ, गूलर का

एक कुबड़ा दरख्त मुझसे जरा उत्तर की ओर जरूर था। वह पुराना भी काफी था···उसे नजदीक पाकर मुझे खूब तसल्ली हुई थी। एक से दो भला। मगर बार-बार पूछे जाने पर कभी कुछ नही बोला वह ! इससे मैं झुंझला-झुंझला उठता था। बाद को पता चला कि यह उसकी लाचारी थी।

"पूरब की ओर झील लहरा रही थी। पच्छिम कुछ खेतों में पाट के पौधे लहलहा रहे थे। ऊँची सतह के खेत ही उस ओर थे जिनमें चीना, सांवां और महुआ की फसलें खड़ी थी। दच्छिन मे दूर तक धान के निरोग पौधों की घनी खेती छा रही थी और धमियापट्टी के लिपी-पुती भीतोंवाले घर जगमगा रहे थे। उत्तर की ओर तो यह तेरी बस्ती रुप-उली अब भी नजदीक है और तब भी नजदीक थी। गाँव के बीच-बीच मे बाँसो के झुरमुटें, आम-इमली-जामुन और पाकर-पीपल के छिटपुट पेड़ अपनी इस तिरहुत-भूमि की एक बड़ी विशेषता है।

"मैंने जो पहली रात यहाँ बितायी, काले पाख की तेरस थी। आसमान खूब साफ था। कुदरत के उस नीले चँदोवे मे तारो के नफ़ीस मोती टँके हुए थे।

"उस रात मैं अपने अन्दर हरारत महसूस कर रहा था। नीद आ रही थी। पत्तों की मेरी डठलें सुस्त पड रही थी और थकावट के मारे नस-नस मे सूनापन-सा छा रहा था।

"हवा मे दूध की गध पाकर इतने में एक गीदड आ पहुँचा। बाड के बाहर कई चक्कर लगाकर बेचारा लौट गया···

"भैंस की पीठ पर बैठकर किसी चरवाहे ने रात के आखिरी पहर मे तान छेड़ी। उस गले मे गजब की मिठास थी बेटा ! उस गीत के कुछ पद मुझे अब तक याद हैं; सुनेगा ?"

जैकिसुन का माथा हिला।

बाबा गुनगुनाने लगा —

"उमर बीत गयी

बाल पकने लग गये
पिछले बारह वर्षों से
इस आँचल मे गाँठ बाँध रखी है मैंने
आने का लेता है तो भी नही नाम
निठुर मेरा दुसाध · · ·
राजा सलहेस प्रीतम मेरे !
तेरे नाम पर गाँठ बाँध रखी है
अपने आँचल मे मैंने
ओ निठुर ! निर्मोही ! ! "

गीत के ये पद जैकिसुन ने आज तक नही सुने थे। यह तो उसे मालूम था कि सलहेस दुसाधों का वीर पुरुष था, महाराज। कुसुमा दोना उसकी प्रेयसी थी। लेकिन सलहेस के बारे मे गाये जानेवाले पद इतने मार्मिक हो सकते है, जैकिसुन को इसकी कोई कल्पना नही थी।

उसके चेहरे पर हुलास की रोशनी छा गयी। बाबा उन पदों का यह असर देखकर स्वयं भी पुलकित हुआ और बोलने लगा :

"फिर मैंने लाख चाहा कि दुबारा कोई ये पद सुना जाय, लेकिन वह लालसा कभी पूरी नही हुई बच्चा ! कभी नही ! ! कभी नही ! ! ! पता नही, उस जवान चरवाहे का क्या हुआ ? दूसरी बार फिर उसे कहाँ देख सका ! कुछ दिनों बाद सुना कि बडे घराने की एक बाल-विधवा उस पर अपना तन-मन निछावर कर चुकी थी। पकड़े जाने पर वह कत्ल कर दिया गया और अगले ही रोज वह लड़की तालाब मे बेजान तिरती पायी गयी।

"हम उम्र साथियों की कमी मेरी छोटी-छोटी उमर के चरवाहों से पूरी होने लगी।

"अपने बारे मे खुद मैं भी उतना उत्सुक नही रहता जितने कि चरवाहे। वे मुझे दिन-भर घेरे रहते। उचक-उचककर बाड़ के अन्दर झाँका

करते। जो बेचारे उचककर भी ऊपर से मुझे नहीं झांक पाते, वाड़वाले टट्टर की सूराखों में अपनी छोटी-छोटी आँखें सटाकर वे देर-देर तक अन्दर मेरी शकल-सूरत निहारते रहते। भैंसें चराने के लिए लड़के ही आते, लेकिन गाय और बैल चराने के लिए जब-तब लड़कियाँ भी आती।

"चौदह-चौदह, सोलह-सोलह साल की लड़कियाँ उचक-उचककर बाड़ के अन्दर हाथ डालतीं। अपनी खुरदरी हथेलियाँ वह मेरे तन पर फेरा करतीं, कड़ी उँगलियों से पत्ते हलरातीं और छूतीं। प्यार और ममता-भरी उनकी वह कड़ी परस मेरे लिए संजीवनी सुधा थी। नया टूसा फूट निकलता तो मुझे खुद उतनी ख़ुशी नहीं होती जितनी कि बस्ती रुपउली की उन अल्हड़ चरवाहिनों को।

"मैला-चीकट, दमियों पैबन्द-लगा, घुटनों तक का कपड़ा इन छोकरियों का पहनावा हुआ करता। सिर पर बालों के सूखे गुच्छे घोसलों-जैसे लगते। गले में नीले काँच के बारीक दानों की एक-आध लड़ी। बाँहों में, घुटनों पर, हाथों पर और पेट पर गुदना—किसीके न भी होता···अब तो खैर गुदना की रिवाज नाम-भर को रह गयी है, लेकिन उन दिनों यह एक आम रिवाज थी। तेरी परदादी का तो समूचा बदन गुदनों से भरा था!"

आश्चर्य से जैकिसुन की आँखें बड़ी-बड़ी हो गयीं। उसकी माँ के बदन में गुदना के दो ही तीन निशान थे। लेकिन बाबा तो यह सौ साल पुरानी बात बता रहा था न? जैकिसुन को अपनी औरत का गेहुँआ शरीर याद आया जिसमें गुदना का एक भी निशान नहीं था।

बटेसरनाथ कहने लगे:

"चरवाहे गीली-चिकनी मिट्टी की पट्टियाँ बनाते और मेरे शरीर पर उन्हें थोप देते। ऐसा वे उस वक्त किया करते जब कि कड़ी धूप के कारण करारी गरमी पड़ रही होती। उनका कहना था कि गीली मिट्टी की पट्टियाँ लगाने से बिरवा पर गरमी का असर बिलकुल नहीं पड़ेगा

···कितना ख्याल वे मेरा रखते थे ! मैं तो सोच-सोचकर दंग रह
बेटा !

"धरती का रस, खाद, धूप, हवा, पानी और तेरे परदादा का लाड़
प्यार पाकर तथा रुपउली के एक-एक व्यक्ति का स्नेह पाकर मैं तेज़ी से
बड़ा होने लगा। अब दरार के अन्दर की वह तंग दुनिया याद आती
तो बार-बार मैं शिवजी को धन्यवाद दिया करता। अब तो बेटा,
राजकुमार की तरह लोगों की आँखों का तारा था।

"राउत रोज़ शाम के वक्त आकर मुझे देख जाते। महीने में ए
बार बाड़ हटवा देते। फिर खुर्पी लेकर अपने हाथों मेरा थाला सँवारते
बड़ी होशियारी से जड़ की ऊपरी मिट्टी खोदते, उसे उलट-पलटकर भु
भुरा बना डालते। कभी तालाब के अन्दर से सँवार और कुम्भी
आते। उन्हें थाले में चारों ओर फैला देते। सँवार और कुम्भी गल-पचक
अव्वल दर्जे की खाद बन जाती हैं···जब तक राउत जिये, मुझे सँवा
और कुम्भी की खुराक साल में तीन बार मिलती रही।"

जैकिसुन बड़े गौर से सुन रहा था।

जेठ की पूर्णिमा का चन्द्रमा आकाश में काफी ऊपर उठ आया था
निचली सतह के खेतों में धान के अंकुर निकल आये थे। चाँदनी रा
में वे ऐसे लग रहे थे मानो सादे मैदान में ब्लू-ब्लैक की स्याही दूर-दू
तक फैला दी गयी हो या कि न दिखायी पड़नेवाले मेघों की छाया प
रही हो···

था तो आजकल यह आमो का मौसम, लेकिन प्रकृति देवी अब की नाराज़ थी। कसम खाने को भी इस बार आम के पेडो मे फल नही लगे थे। यहाँ-वहाँ छिट-पुट तौर पर दस-पाँच झाडो मे बौरें निकली भी तो बेकार। चैत की आँधियाँ उन थोडी-कुछ अंबियों को चौपट कर गयी थीं; अचार और चटनी तक आमों की दुर्लभ थी अब की···

आमों का ज़ोर होता तो जैकिसुन कही इस तरह बरगद के तले यह रात गुज़ारता?

उसके दादा ने मीठे आमों के दस पेड़ लगाये थे। उनमे से छ अब भी मौजूद थे। पिछले साल उनकी डालें फलों के बोझ से झुक आयी थी। झोपड़ीवाला मकान खड़ा किया था जैकिसुन ने। लाठी, टॉर्च और तकिया-कम्बल लेकर शाम को वह रोज निकल जाता बागो की ओर। आमों की रखवाली का यह सिलसिला डेढ़-दो महीने तक चला था। आमों के मौसम मे कौन गृहस्थ अपने बाग़ की रखवाली नही करता?

और, सयोग की बात कहिये या कुछ भी कहिये, अब की आमों की प्रसव-शक्ति एकदम गायब हो गयी थी। लीचियो के बाद अब बच्चे आमो के नाम जपा करते और उनकी यह बेताबी माँ-बाप के दिल दुखा जाती।

जैकिसुन आज दरभगा के टावर-चौक से रुपये के दस बड़े आम ले आया था—'बंबई' आम। लाया तो था बच्चों के नाम पर, लेकिन माँ ने नही माना। बोली—"ले! तू कहाँ का भीखम पितामह है! तेरे बेटे आम खायेंगे तो मेरा बेटा नही खायेगा?" बाल्टी में पड़े थे, उठाकर दो बड़े आम बुढिया ने जैकिसुन की थाली मे डाल दिये···

अहीरों का यह खानदान पिछली पाँच पीढ़ियों से इकलौता ही चला आया था। जैकिसुन अपनी माँ का बेटा भी था, बेटी भी था; जेठा-मँझला और छोटा सब-कुछ अकेला वही था। हाँ, अब आकर इस पीढ़ी मे दैव की दया से दो बच्चे हुए थे और एक फिर होनेवाला था।

खाकर उठते वक्त वह बोला था—"फिर ले आऊँगा, तुम भी जरूर यह आम खाना। ऐसा बढ़िया 'बम्बई' कभी नहीं चखा होगा···"

"हाँ, रे ! देखने में भी ये आम बड़े खूबसूरत हैं,"—बुढ़िया ने कहा और बाल्टी से उठाकर एक आम सूंघने लगी। सूंघते-सूंघते माथा हिलाने लगी और आँखें नचाकर बोली—"जभी तो ! देख न, छिलकों पर कैसी भीड़ जुट आयी है चीटियों की !"

"ऐसे नहीं अम्मा, खाकर देख !" जैकिसुन आँखें फैलाकर बोला तो उसने कहा—"तो छोड़ थोड़े दूँगी इन्हें ? एक बहू खायेगी, एक मैं ···भला, कहाँ के है ये आम ?"

हाथ-मुँह धोकर आया तो फिर जैकिसुन ने माँ से कहा—"दरभंगा में महाराज के खास बाग हैं कई। यह वहीं के आम हैं। जमींदारी तो अब सरकार ले रही है। इन बागों के फल पहले कभी नहीं बिके, दरबारियों और बड़े अफसरों के यहाँ सौगात की तौर पर पहुँचते थे। अब महाराज को दिखलावे की उतनी परवाह नहीं है जितनी कि स्टेट की ज्यादा-से-ज्यादा चीज-वस्त औने-पौने दाम पर बेचकर नगद रकम बना लेने की है···यह आम भी शायद इसीलिए बाजार में मिल गया है अम्मा !"

सो, अब तक जैकिसुन के दाहिने हाथ से 'बम्बई' की खुशबू आ रही थी। उसका जी हुआ कि बाबा को अपना हाथ सुँघा दे।

जैकिसुन ने दाहिना हाथ बाबा की नाक की तरफ उठाया।

बाबा ने चट से गर्दन झुका दी। उसकी लम्बी नाक जैकिसुन के दाहिने हाथ को सूंघने लगी···

बाबा देर तक उसके दाहिने हाथ से 'बम्बई' आम की सुगन्ध लेता रहा और नथने फड़काता रहा। अपना भारी माथा हिलाकर बटेसरनाथ बोला :

"आम की ऐसी बढ़िया खुशबू तो मेरे लिए बिलकुल नयी बात है बेटा ! अपन तो सीधे-सादे ढंग के देहाती बरगद ठहरे ! क्या पता कि

कैसा दिव्य फल आज तूने खाया···इतना तो मालूम हो गया कि यह बम्बइया किस्म का कलमी आम रहा होगा कोई; जेठ महीने की अमावस सुहागिन औरतों के लिये त्यौहार की तिथि हुआ करती है। उस दिन वे हमारी पूजा करती है। बड़े घरानों की सधवा स्त्रियाँ थालो मे 'बंबई'-आम के कतरे सजाकर न जाने कितना नैवेद्य प्रतिवर्ष मेरे सामने रखती आयी हैं ! परन्तु तेरे हाथ से जो सुगन्ध आ रही है वह तो गजब की है रे ! कहाँ से लाया था यह आम ?"

जैकिसुन मसोसकर रह गया कि होठ खुले और वह बतलाये इस आम के बारे मे !

क्षण-भर बाद बाबा खुद ही कहने लगा :

"सुना है, दरभंगा और मधुबनी के बाजारो मे अब उन बागो के फल बिकने आते है, साधारण लोगो तक जिनकी हवा तक कभी नही पहुँची। पहरेदारों की कड़ी निगरानी के कारण गोरैया तक जिसमे कभी चोंच न डाल सकी, उन पोखरो की रुपहली मछलियाँ अब तराजू पर सरेआम तुलती है। जाते-जाते भी ये राजा, जमींदार, भूस्वामी, सामन्त चाँदी काट रहे है। घोड़े की कीमत पर वे हाथी हटा रहे है, बछड़े की कीमत पर घोड़ा; और बछड़ा ?

"बछड़ा बिल्ली की कीमत पर !

"दरी की कीमत पर शामियाना बिक रहा है, रुमाल की कीमत पर दरी बिक रही है !

"ताँबा, पीतल और काँसा के दस-दस बीस-बीस मन वजनोंवाले बर्तन रातों-रात ठठेरो के यहाँ पहुँचाये जा रहे हैं !

"सुनारो और जौहरियों की व्यस्तता इधर काफी बढ गयी है···

"और तेरी यह आजाद सरकार इन सामन्ती श्रीमन्तों को ज्यादा-से-ज्यादा हरजाना देने की तिकड़मे भिड़ा रही है। व्यक्तिगत सम्पत्ति के वाजिब हकों का दायरा बेहद बढ़ाकर जमींदारी प्रथा का यह जो नकली श्राद्ध कांग्रेसी लोग कर रहे हैं, क्या नतीजा निकलेगा इसका ?"

जैकिसुन गर्दन ऊँची करके बाबा के चेहरे की ओर देखने लगा। इन्हें कितनी बातें मालूम है ! - उसके विस्मय का कोई अन्त नही था। लेकिन अभी जैकिसुन उनके मुँह से पुराने जमाने के बारे मे सुनना चाहता था। मौजूदा सवालों की अँतड़ियाँ तो वह खुद भी रोज उधेड़ा करता। बस्ती रुपउली के अन्दर आधा दर्जन ऐसे जवान थे जो शासन की वर्तमान व्यवस्था के निठुर आलोचक थे। मगर ठीक-ठिकाने मे पिछली बातें बतानेवाला वहाँ कोई नही था।

गोरैया का चूजा सो रहा था बाबा की गोद मे। उसकी तरफ माँ की ममता-भरी निगाहों से देखता हुआ अब वह कहने लगा :

"तीन वर्षों के दौरान मे तीन बार बाड़ बदली गयी। चौथी दफा बाड़ बदलने की जरूरत इसलिए नही पड़ी कि अब मैं बड़ा हो आया था—इतना बड़ा कि कद्दावर-से-कद्दावर भैंस-गाय का मुँह मेरे कन्धों तक नहीं पहुँच पाता ?

"अब मेरी देह मूसल जितनी मोटी हो गयी थी। नीचे की तीन टहनियों को राउत ने पिछले वर्षो मे छाँट डाला था। बच्चे की छठवी उँगली को माँ-बाप कटवा देते हैं, मेरी टहनियाँ काटते वक्त राउत की भी वही भावना रहती थी। पीले पत्ते, सूखी छाल या टूसों की सूखी कोर अक्सर राउत खुद हटा दिया करते और अलग खड़े होकर मुझे देर-देर तक एक-टक निगाहों से देखा करते।

"अब मेरी चार-पाँच डालें हो गयी थी। टहनियाँ तो बीसियो थी। पत्ते बड़े-बड़े, जिनकी चिकनी हरियाली आँख वालो को जुड़ाती थी; नये-नये पत्ते अपनी सिंदूरी सूरत के कारण उगते सूरज और दहकती आग के अन्दर डाह पैदा कर देते।

"जो हाथी के पोढ़े दाँतो की सूरत होती है, उन दिनो मेरी डालो की वही सूरत थी। भीनी-भीनी-सी कसैली खुशबू उन डालों की एक खास खूबी थी। जो भी करीब आता, नथने फैलाकर गहरी साँसें खींचा करता। घर घुसने के बाद बथानों की ओर लौटनेवाले ढोर-डंगर मुझे

ज़रूर सूँघते जाते।

"उस वर्ष पहली बार मेरी टहनियों में फलियाँ लगी थीं। पकने पर जंगली गूलर के फलों-जैसी लाल-सुर्ख और उतनी ही बड़ी दिखायी देती थीं।

"राउत ने देखा तो बोले—'मसें भीग रही हैं इसके तो अब।'

"यह सुनकर शर्म-सी लगी मुझे! नये पत्तों की लाली फैलकर मानो कन्धों तक आ पहुँची।

"अरे, किसी ने सुन तो नहीं लिया राउत ने जो कुछ कहा? मैंने देखा, आस-पास कोई नहीं था। उधर, एक तरफ को वही बुड्ढा-बौना गूलर अपना झख मार रहा था।

"अगले ही दिन राउत ने मौलसिरी के ताजा फूलों की माला डाल दी मेरे गले में।

"लेकिन वह माला दो ही रोज़ मेरे सीने पर झूल पायी बेटा!

जैकिसुन ने प्रश्नसूचक दृष्टि से बाबा की तरफ देखा। बटेसरनाथ के चेहरे पर कुढन या परेशानी नहीं, बल्कि अन्देसा निखर आया था··· वह अन्देसा जो कमसिन छोकरों की तरफ़ बुजुर्गों में देखा जाता है।

बाबा की जीभ चलने लगी:

"बाईस साल की एक बहू रोज़ अपने खेत में राख और गोबर डालने आती थी। उसकी जमीन यहाँ से ज़रा-सा पच्छिम पड़ती थी। तीसरे दिन उस माला पर उसकी निगाह आयी। थोड़ी देर तक तो वह मूरत की तरह रास्ते पर खड़ी रही, फिर टोकरी अलग रखकर करीब आयी। चेहरे पर चेचक के दाग थे। आँखें बड़ी-बड़ी थीं—कानों को छूती हुई-सी। बदन कठमस्त था···"

बाबा ज़रा-सा ठिठके, फिर बोलने लगे:

"इससे पहले कोई जवान औरत इस कदर मेरे करीब कहाँ आयी थी! नहीं बेटा, नहीं आयी थी रे! फिर क्या हुआ?"

जैकिसुन आवश्यकता से अधिक सावधान हो उठा, क्योंकि बाबा ने

पिछले शब्दों पर जोरों का झटका दिया था। फुर्ती ने उसकी रीढ़ को तान दिया।

बाबा बटेसरनाथ कहता गया :

"हुआ यह कि तरुण नारी-देह की विलक्षण गन्ध पाकर मेरी रग-रग स्पन्दित हो उठी, पत्ते जल्द-जल्दी हिलने लगे और टूसों की कोखें दहकने लगीं।

"बिलकुल पास आयी तो मेरे कन्धे पर दाहिना हाथ डाला और कुछ सोचने लगी। मुझे महसूस हुआ कि ज्यादा देर तक अगर इसने अपना हाथ मेरे कन्धे पर रखा तो छालें पानी-पानी होकर बह जायेंगी...

"जल्दी-जल्दी में उसने वह माला उतार ली। उतार क्या ली? जहाँ उसमें धागे की गाँठ थी, वहाँ से उसे तोड़ डाला। तकलीफ तो मुझे जरूर हुई। आखिर राउत ने उतने प्यार से मौलसिरी के फूलों की वह माला मेरे लिए बनवायी थी और खुद अपने हाथों से इस गले में डाली थी! मगर यह सोचकर कि चलो, बेचारी अपने प्रीतम को रिझायेगी इस माला के जरिये, अपने-आपको तसल्ली दे ली।

"मेरे गले से माला नदारद देखकर तेरे परदादा को बेहद रंज हुआ था।

"उसी वर्ष, क्वाँर के महीने में तेरा दादा पैदा हुआ। बूढ़े पंडितराज का आशीर्वाद चार साल बाद लोगों के सामने था।

"फसल उस बार ऐसी अच्छी आयी थी कि किसानों के रोएँ-रोएँ से खुशी का फव्वारा छूटता था। ऐसा लगता था कि कम-से-कम साल-भर तो अब के लछमी महारानी का पद्मासन इसी इलाके में रहेगा। राजा खुश था। जमींदार खुश थे। गृहस्थ खुश थे। बनिहार और मजदूर खुश थे। अधिक भिक्षा की आशा से भिखमंगों की भी खुशियों का ठिकाना नहीं था। तीर्थों के पण्डे और मन्दिर के पुजारी उत्साह से भर उठे थे, उनकी श्रद्धा-भक्ति गहरी हो आयी थी।

उस जमाने में तेरी बस्ती की आबादी इतनी ज्यादा नहीं थी। कुल

मिलाकर सत्तर परिवार थे। बच्चे-बूढ़े-जवान-अधेड़ सभी औरत-मर्दों की तादाद तीन सौ से ऊपर नही थी। लोग मजबूत काठी के हुआ करते थे। बीमारियों की यह किचिर-किचिर हमेशा नही लगी रहती थी। आजकल की अपेक्षा रहन-सहन उन दिनों कहीं ज्यादा सादा था। मिर्ज़ई, दुपलिया टोपी, चमरौधा जूता और पतले बाँस की नकुली छड़ी, जिसका सिर चाँदी के पत्तर से मढा होता—मझली और ऊँची हैसियतवालो का यही बाना था। राजा, बाबू-बबुआन, जमीदार, दीवान और राज-पुरोहित-राजपण्डित लोग छोटे लाट की दरबारदारी मे जाते तो चुस्त पाजामा, शेरवानी, पेचदार पगडी और दिल्लीवाले जूतों मे हुआ करते।

"तेरा परदादा चार गज की गाढ़ी धोती और ढाई गज की चादर लेकर पहुनाई करने निकलता था। जूते उसके कभी नही देखे मैंने।

"पूस-माघ मे उस वर्ष धान जब खलिहान मे तोला गया, तो मालूम हुआ कि तीन गुनी उपज हुई थी। लोगो ने अनाज बेच-बेचकर कर्जे की पिछली रक़में चुकायी और शादी-ब्याह, मूंडन-छेदन, जनेऊ-उपनयन, तीर्थ-व्रत वगैरह कामों मे खुलकर खर्च किया।

"राउत की खेती-गिरिस्ती खूब साफ-सुथरी थी। शायद ही उसे कभी कर्ज लेना पड़ा हो। बेर-कुबेर के लिए वह चार पैसे सँभालकर रखता था। कभी मैंने तेरे परदादा को हाय-हाय करते नही पाया। उस साल रुपये का चार मन धान बिका था। राउत चाहता तो सौ मन बेच लेता, लेकिन नही। क्या जरूरत थी रुपयों की! सुखा-सुखाकर सौ मन धान तेरी परदादी ने कोठार मे डाल ली।

"अभी रेल नही खुली थी। जाने-आने के लिए हाथी, घोड़ा, ऊँट, बैलगाडी, पालकी-तामदान, सगड़ या इक्का और खटोला वगैरह की मदद ली जाती थी। इस साल चैत में वारुणी का परब आया तो राउत पाँव-पैदल गंगा नहा आये—सिमरिया घाट जाकर। गगाजल और गगामाटी लाये थे साथ। चुल्लू-भर गंगाजल उन्होंने मुझ पर भी छिड़क दिया और तनिक-सी गंगामाटी सीने मे लगा दी। वह अकेले नही गये

थे, गंगा, गाँव के दस-बारह आदमी जोट बाँधकर गये थे—बोलते-बतियाते और हँसते-गाते। चावल-दाल, नमक-मिर्च, घी-तेल···सीधा का सारा सामान था। बर्तन भी साथ थे—तसला, बटलोई, कड़ाही, कलछी, थाली-बाटी, लोटा-गिलास। जमात मे दो औरतें थी, इससे रसोई-पानी का बड़ा आराम रहा। दो दिन जाने में, दो दिन आने मे। दो रोज़ घाट पर गंगा मइया की गोदी मे। महीनों इसी का बखान चलता रहा। जो नही जा सके थे वे मुँह बा-बाकर सुना करते; जो लोग हो आये थे, यात्रा की चर्चा करते-करते उनकी जीभ थकना मानो जानती ही नही थी।

"राउत ने अब मेरी जड़ों में गोल-मोल-सा एक छोटा चबूतरा बना दिया।

"हर सोमवार की सवेरे आकर तेरी परदादी मेरी जड़ों में लोटा-भर जल ढालने लगी तो इससे मैं बहुत खुश हुआ।

"अगले वैशाख में राजा के मझले कुमार की शादी हुई। शुक्ल पक्ष की दशमी थी। बारात इसी रास्ते गुजरी थी। नौकर-चाकर मिलाकर सौ आदमी रहे होगे। कन्धो पर बाँस रखकर सोलह बेगार भारी-सी एक तख्तपोश ढोये जा रहे थे, उस पर दरी और जाजिम बिछी थी। मय साज-बाज के एक रंडी उस तख्तपोश पर नाच रही थी—तबला-डुग्गी, सारंगी, मँजीरा सब साथ दे रहे थे।···वैसा अद्भुत दृश्य मैंने फिर कभी नही देखा बेटा! न, कभी नही!!"

जैकिसुन को अपने कानों पर यकीन नही हुआ···बारात मे साथ चलते बेगारों के कन्धे! कन्धों पर बाँस और बाँसों पर तख्तपोश! तख्तपोश पर साज-बाज समेत एक बाईजी नाच रही हैं और राजा का बेटा ब्याह करने जा रहा है···

कैसी अजीब बात सुना रहे हैं बाबा—जैकिसुन ने सोचा और उसके रोंगटे खड़े हो गये।

दम मारकर बाबा कहने लगा:

"आज तो इन बातों पर सहसा विश्वास नहीं करेगा कोई, किन्तु सौ वर्ष पहले दर-असल अपने इन इलाकों में जमींदार सर्वेसर्वा हुआ करता था। रिआया से बेठ-बेगार लेना उसका सहज अधिकार था···वह रोब ! वह दबदबा ! वह अकड़ ! वह शान ! वह तानाशाही ! वह जोर ! वह जुल्म ! क्या बताऊँ, बेटा ?

"छोटी औकात के और नीची जात के लोगों को तो खैर वह कीड़े-मकोड़े समझता ही था, अच्छी-अच्छी हैसियत के भले-खासे व्यक्तियों से वक्त-बेवक्त नाक रगड़वाता था जमींदार।

"औसत हैसियत का एक गृहस्थ था शत्रुमर्दन राय। अरे, इसी जीवनाथ का दादा···"

जैकिसुन ने सोये हुए एक जवान की ओर निगाह फेरी—जीवनाथ! अजी, यह जीवनाथ तो उसका साथी था। दरजा आठ तक पढ़ा-लिखा और अब मेहनती किसान···टुनाइ पाठक और जैनरायन की आँखों का काँटा···तो, इसके दादा के साथ जमींदार ने कोई बदसलूकी की होगी—

जैकिसुन बार-बार अपने उस साथी की तरफ़ देखने लगा।

बाबा ने कहा :

"गाढ़ी नींद सो रहा है जीवनाथ। बड़ा मेहनती और ईमानदार लड़का है। इसकी सूझ-समझ भी काफी पैनी है रे !"

"हाँ बाबा !"—मन-ही-मन जैकिसुन बोला, "यही तो हमारा लीडर है···"

बाबा कहता गया :

'बस्ती रुपउली में आम लोगों के दु:ख-सुख की जैसी चिन्ता यह पट्ठा रखता है, उसका दसवाँ हिस्सा भी अभी तेरे अन्दर मैं नहीं पाता हूँ। क्यों, है न ठीक ?'

'हाँ' की मुद्रा में जैकिसुन ने सिर हिलाया।

बाबा ने कहा :

"शत्रुमर्दन राय सीधा-साधा मेहनती खेतिहर था। उसके बाप ने राजाबहादुर रमादत्तसिंह से तीस रुपये सूद पर लिये थे। बाप कर्ज की वह रकम नहीं चुका सका। कर्ज की रकम सूद-दर-सूद का पैसा-अधन्ना पी-पीकर मोटी होती गयी। अपनी ईमानदारी और पैनी सूझ-बूझ के कारण शत्रुमर्दन राय गँवई पचायत का बेजाब्ता मुखिया समझा जाता था।

"पण्डित चन्द्रमणि का छोटा धेवता अपने नाना और भाई के बल पर लुच्चों का सरगना हो उठा था। गाँव की बहू-बेटियों की आबरू उतारना, भरे तालाब की निकास का रास्ता खोलकर रातों-रात मछलियाँ भगा देना, बाग के नये पेड़ कटवा डालना, भैंस और बैल लापता कर देना, किसीके खिलाफ़ झूठ-मूठ जमींदार के कान भरना…कोई भी कुकर्म उससे छूटा नहीं था।

"गाँव की पंचायत ने एक बार उसे मामूली सजा दी—सजा क्या दी, दो रुपये का जुरमाना ठोक दिया। बाकी पंच दुविधा में थे, लेकिन शत्रुमर्दन राय ने साफ-साफ कहा—चाहे कुछ हो, हमें बगैर किसी रियायत के इस बलिभद्दर से कैफियत तलब करनी चाहिए…" बलिभद्दर रायजी पर बड़ा गुस्सा हुआ और उठकर चला गया। रायजी ने जोर डाला तो पचायत ने मुलजिम पर दो रुपये का जुरमाना ठोका।

"राजाबहादुर का छोटा भाई बलिभद्दर को खूब मानता था। इस तरह, उसके लिए शत्रुमर्दन राय के खिलाफ मालिक के कान भरना-भरवाना बाएँ हाथ का मैल था।

"आखिर राजाबहादुर के कान रायजी के खिलाफ खूब भरे गये।

"राजाबहादुर के दरबार में दस भोजपुरिया लठैत 'प्यादा' के नाम पर पलते थे।

"एक रोज सबेरे एक प्यादा रायजी के घर आ धमका—'तलबी है बाबू शत्रुमर्दन राय की!'

बिच्छू के डंक-सी कड़ी मूंछें, सिल-सा सपाट सीना···छोटी-छोटी आँखें, छोटे-छोटे बाल, तगड़ी डील और कद्दावर डौल ! साढ़े चार हाथ की ऊँची लट्ठ सँभाले—सरसों का तेल चुपड़-चुपड़कर पीती हुई लट्ठ ! किसीने सहमते-सहमते पूछ दिया—"क्या नाम है आपका सिपाही जी ?"

"हवलदार पांडे···' अकड़ी हुई आवाज़ लोगों के कानो से टकरा गयी । डेढ सेर चावल, पावभर दाल, दो सेर की ताज़ी हरी लौकी और ऊपर से एक अधन्ना···सिपाही जी को आसामी की तरफ़ से सीधा मिला और जवाब मिला—"कल हाज़िर होऊँगा ।"

"रायजी समझ तो गये ही कि क्या होनेवाला है और इसके पीछे कौनसा सूत्र काम कर रहा है !

"वह दिन-भर परेशान रहे कि कहीं से चालीस रुपये जैसे भी मिल जायें, लेकिन कोई सूरत नही निकली । बेटा, वह रुपयों का जमाना तो था ही नही, जिन्सों और मालों का जमाना था । रुपये में तीन-तीन चार-चार मन तक धान मिलते थे; दो-दो ढाई-ढाई मन चावल । सात सेर, छः सेर घी लाता था, डेढ़-दो मन गुड़ । कौड़ियाँ पैसों की जगह इस्तेमाल होती थीं । नोट का चलन बिलकुल नही हुआ था···आज तो एक बीघा उपजाऊ जमीन ढाई-ढाई तीन-तीन हजार रुपये पर उठती है ! उन दिनों पच्चीस रुपये मिलते थे एक बीघा धनहर खेत के । आज तेरी बस्ती के पचासों आदमी बाहर रुपये कमा रहे है । यहाँ के किसान हर-साल अनाज बेचकर हजारों की खडी रकम बनाते हैं ।

"तो, दिन-भर परेशान रहा शत्रुमर्दन राय, लेकिन रुपये दस भी देने को कोई तैयार नहीं हुआ ।

"जी कड़ा करके अगले दिन सवेरे वह राजाबहादुर के सामने हाजिर हुआ । हाथ जोड़कर बोला—"हुजूर ! गरीबनेवाज ! उतनी रकम के बदले जमीन कबाला करा लीजिये ! दुहाई सरकार की ! या फिर, दो महीने की मुहलत मिले···"

"गर्दन-समेत माथा हिलाकर राजाबहादुर ने कहा—'हूँ ऊँ ऊँ ऊँ'''

"करीब ही खड़ा था मुंशी तुरन्तलाल दास। वह राजाबहादुर का महामन्त्री था। उसका बाप मुंशी कृष्णलाल दास राजाबहादुर के पिता गौरीदत्त सिंह का दीवान था। पुश्तैनी राज-भक्ति पक चुकी थी।

"दासजी ने राजाबहादुर के राजसी खयाल पर शान चढ़ाने की नीयत से कहा - 'हुजूर, मुहलत तो कई बार यह ले चुके हैं'' '

"हूँ ऊँ ऊँ ऊँ''—राजाबहादुर ने पतली मूँछों पर बाएँ हाथ की दो उँगलियों से दुतरफ़ा ताव देते हुए कहा। रायजी बेचारे उसी तरह हाथ जोड़े खड़े रहे। क्षण-भर बाद मालिक ने आँखें तिरछी करके दीवानजी को इशारा किया कि असामी को यहाँ से ले जाओ'''

"बेटा, यह सामने से हटाने-भर का इशारा नहीं था। यह आज्ञा थी शत्रुमर्दन राय पर बर्बरता बरतने की!

"सदर दरबार की बाईं ओरवाला दरवाजा पार करके एक पुराना पक्का मकान था। तख्तों की बनी बड़ी-बड़ी सन्दूकें पहियों पर खड़ी रखी थीं बरामदों में। आँगन का चौक खाली था।

"शत्रुमर्दन राय को बीच आँगन में खड़ा कर दिया गया।

"लट्ठ लिये हुए चार सिपाही सामने मुस्तैद थे।

"बाँहों को माथे के ऊपर खड़ा करके एक सिपाही ने बाँध दिया। दो गज़ के फ़ासले पर दो ईंटें डाल दी गयीं। एक ईंट पर एक पैर, दूसरी पर दूसरा पैर। इस तरह रायजी खड़े किये गये। यमदूत-सी मूँछोंवाला एक अधेड़ भोजपुरिया जमादार कोड़ा लिये नज़दीक आया। दूसरी ओर से एक और आदमी आया, जिसके हाथ में मुँह-बन्द हाँडी थी।

"ज़मींदार का इशारा पाकर वह शत्रुमर्दन के बिलकुल करीब पहुँचा और हाँडी का मुँह खोलकर लाल चींटों का छत्ता निकाल लिया। छत्ते में डोरी लगी थी। उसने खाली हाँडी नीचे ज़मीन पर रख दी और बिलबिलाते लाल चींटोंवाला आम के अधसूखे पत्तों का वह घोंसला

रायजी के माथे पर टिकाया; ऊपर डोरी पकड़े रहा...

"चीटे हजारों की तादाद में शत्रुमर्दन राय की देह पर फैल गये।

"माथा हिलाकर बेचारे ने बँधे हाथों को ऊपर-ऊपर झटकने की कोशिश की कि पीठ पर कोडे पड़े—सपाक्-सपाक् ! चार वार !!

"ख़बरदार!" जमादार गरज पड़ा, "अपनी ख़ैर चाहते हो तो वैसे-के-वैसे खड़े रहो, वरना..."

"आँख, नाक, कान, मुँह, होठ, गर्दन, कपार—और बाकी समूचे बदन से चिपक गये लाल चीटे ! थोड़ी देर तक शत्रुमर्दन राय हाय-हाय होय-होय हुई-हुई करता रहा। एक साथ हजारों की सख्या में चलती-फिरती भूखी-प्यासी जहरीली सुइयों ने लाचार आदमी पर हमला कर दिया था।

"शत्रुमर्दन काफी देर तक छटपटाता रहा...

"वह असल राजपूत था बेटा ! इतना कुछ गुजरा उस पर, लेकिन 'माफी' की बात मुँह से नही निकली। बलिभद्दर भी उस वक़्त वहीं अंदर महल मे था। यही सोचकर तो वह दुष्ट उस वक्त वहाँ मौजूद था कि रायजी कहीं नाक रगड़ने लग जायें, माफी माँगने लगें तो कर्ज की कुल रकम बलिभद्दर जमा कर देगा।

"लेकिन दुष्ट के मनसूबे पूरे नही हुए।

"शत्रुमर्दन राय अपना बदन लाल चीटों से बिंधवाता रहा। छटपटाता रहा और दाँतो-पर-दाँत बैठाकर चुभन व जलन पचाता रहा। हिलता-डुलता रहा और कोड़े खाता रहा...

"आख़िर वह बेहोश होकर गिर पड़ा।

"और जिस समय शत्रुमर्दन पर यह बर्बरता ढायी जा रही थी, ठीक उसी वक्त महलों में राधाकृष्ण की युगल-जोडी के सामने मीठी आवाज-वाले एक पुराणपाठी महानुभाव राजमाता साहिबा को श्रीमद्भागवत की रास-पचाध्यायी सुना रहे थे।

"इस घटना के चार-छह दिन बाद एक शाम को राउत अपने दो-तीन

मित्रों से यह सब सुन रहे थे...तब से ज़मींदारों के प्रति मुझे घोर घृणा हो गयी बेटा !"

जैकिसुन ने गहरी साँस ली।

उसकी मुखमुद्रा पर विषाद की गहरी छाया घिर आयी थी। उसे उन बुड्ढों का खयाल आ गया जो मौका-बेमौका बीते युगों के गुण गाते रहते हैं। उसे पग्गड़धारी उन पंडितों की याद आ गयी, ज़मींदारों की प्रशंसा करते-करते जिनकी जीभ चंदन-चोआ उगलने लगती है। उसका चेहरा कठोर हो आया।

बाबा बटेसरनाथ ने कहा :

"तेरा चेहरा क्यों उतर आया है बेटा ? बौड़म कहीं का ! क्या सोचता है कि वह ज़ालिम ज़माना फिर वापस आ जायगा लौटकर ! हः हः हः हः ! ! !

"नहीं रे, नहीं ! तू जिस युग में पैदा हुआ है वह राजाओं-ज़मींदारों और सेठों-साहूकारों का युग नहीं, बल्कि तेरे-जैसे आम नौजवानों का ज़माना है..."

बाबा ने जैकिसुन की ठुड्डी में उँगली लगा दी और कहा :

"मैं बूढ़ा ज़रूर हो आया हूँ लेकिन बीते युगों की सड़ाँध का समर्थन किसी भी कीमत पर नहीं कर सकूँगा। भविष्य तेरे-जैसे तरुणों के हाथों में है। राजाबहादुर रमादत्त सिंह की मौजूदा औलाद आज क्या कूवत अपने अन्दर रखती है, देख ही रहा है तू !

"आज के ये राजाबहादुर सार्वजनिक उपयोग की भूमि, पोखर, चरागाह, श्मशान वगैरह चोरों की तरह चुपके-चुपके बेच रहे हैं। इतना बड़ा अन्याय अब दुनिया यों ही बर्दाश्त कर लेगी बेटा ! नहीं रे, हरगिज़ नहीं !"

जैकिसुन का दिमाग आश्वासन के ये बोल पाकर हलका हो उठा। अब उसके तरुण होंठों पर गुलाबी मुस्कान खेल गयी; आँखों के कोये चमकने लगे।

६

रात आधी बीत चुकी थी। प्रकृति बिलकुल नीरव और नि.स्पन्द लगती थी। पूर्णिमा की प्रौढ़ चाँदनी समग्र संसार को अपने स्नेहपाश मे ले चुकी थी। चन्द्रमडल मध्य-आकाश के नील-सागर में दमक रहा था।

बाबा ने कहा :

"तुझे प्यास लगी होगी ! और, ऊब तो नही उठा है तू ?"

हाँ, जैकिसुन को प्यास जरूर लगी थी, मगर बाबा की बातों से ऊबा तो वह बिलकुल नही था।

बाबा उठा और दोने में पानी ले आया।

वह अनोखा लगा जैकिसुन को। पहले सोचा उसने कि बाबा को बार-बार जाकर दोने में पानी लाना पड़ेगा, लेकिन पीकर मालूम हुआ कि अब और पानी उसे नही चाहिए। स्वाद इस जल का बेशक कसैला था, परन्तु बडी तृप्ति मिली थी पीकर।

तब तक बाबा बैठ चुका था।

कुछ देर वह चन्द्रमंडल की तरफ देखता रहा, फिर जैकिसुन के प्रति मुखातिब होकर कहने लगा :

"एक-एक व्यक्ति अपने बारे मे अन्तहीन आख्यान-उपाख्यान सँजोये हुए है। एक-एक दिन की घटना अगर मैं तुझे ब्यौरेवार सुनाने लगूँ तो महीनों नही, वर्षों लग जायँगे। उतना कौन सुनेगा और कौन सुनायेगा ? किसी बीहड जगल मे अगर मैं होता और मनुष्यों के जीवन की बातें बिलकुल न जानता होता तो फिर इस प्रकार का अवसर ही भला कैसे आता ?

"राउत पचपन साल की आयु में ही चल बसे थे। तेरी परदादी

पन्द्रह वर्ष और जिन्दा रही। हर सोमवार को वह मेरी जड़ों में लोटा-भर पवित्र जल ढालती थी। यह नियम उसका कभी नहीं टूटा।

"हिजरी सन् १२८० में भारी अकाल पड़ा था। वैसा अकाल सैंकड़ों वर्ष के अरसे में एक-आध बार ही पड़ता है बेटा!

"बात यों हुई कि पिछले कुछ-एक वर्षों से फ़सल मामूली आ रही थी। साल-भर का खेवा-खर्चा लोगों का अपना यों भी तो पूरा नहीं पड़ता था। उस बार की धान की मुख्य अगहनी फ़सल बिलकुल चौपट हो गयी थी। चैत बीतते-बीतते बड़े-बड़े गृहस्थ तक जौ-चने की रोटियों पर उतर आये थे। चावल ही जिन इलाकों का खास भोजन हो, वहाँ जौ-चने का टिक्कड़ खुशी-खुशी तो कोई खायेगा नहीं। मरता क्या नहीं करता!

"मामूली हैसियत के किसान शकरकंद बनाम अल्हुआ की शरण ले चुके थे। खेत-मजदूर और जन-बनिहार आम की सूखी गुठलियाँ चूर-चूरकर मडुआ का जरा-सा आटा उसमें मिलाकर टिक्कड़ बनाते और उसी से भूख की आँच को शान्त करते।

"उस वर्ष रबी की फसल भी दगा दे गयी थी। आम भी नहीं फले थे। वैशाख गया, जेठ गया और आषाढ़ भी बीता, लेकिन इन्द्रदेव का दिल नहीं पसीजा—नहीं पसीजा! नहीं पसीजा!!

"मेरी छाया में बैठकर तेरी इस बस्ती रुपउली के ब्राह्मणों ने मिट्टी के ग्यारह लाख शिवलिंग बनाये और उनकी सामूहिक पूजा की उन्होंने; फिर भी मेघ की कृपा नहीं हुई—नहीं हुई! नहीं हुई!! नहीं हुई!!!

"ग्वालों, अहीरों और धानुकों ने यहीं चार दिनों तक भुईंयाँ महाराज का पूजन किया, दस भेड़ें बलि चढ़ायीं और दो जवान भाव खेलते-खेलते लहूलुहान होकर गिर पड़े थे; फिर भी राजा इन्दर खुश नहीं हुआ—नहीं हुआ! नहीं हुआ!! नहीं हुआ!!!

"एक रात मर्द जब सो गये तो गाँव-भर की औरतें दस-पन्द्रह गुटों में बँट गयीं। तालाब से मेढक पकड़ लाये गये, उन्हें ओखलियों में मूसलों

से कुचला गया। गीतों में बादल को बुलाती रहीं वे, देर तक बुलाती रहीं; लेकिन मेघ नहीं आया—नहीं आया ! नहीं आया !!

"पंडितों ने महीनों तक चंडी-पाठ किये, साधकों ने एक-एक मन्त्र को लाखों जपा...सब व्यर्थ ! वरुण को दया नहीं आयी।"

जैकिसुन मानो साँस रोककर बाबा की बातें सुन रहा था। साँस को दिल की धड़कन के प्रति ईर्ष्या हो रही थी कि बातें उसी के पल्ले ज्यादा पड़ रही हैं !

क्षण-भर चुप रहकर बाबा ने फिर आरम्भ किया :

"तालाबों में पानी घटने लगा तो लोग मछलियों और कछुओं पर टूट पड़े। मछलियाँ भूनकर बिना नमक के ही उन्हें वे पेट के हवाले कर देते। जो गृहस्थ तालाबों के हक़दार थे, उनकी कड़ाई बढ़ी तो जन-साधारण चोरी-चोरी से मछलियाँ पकड़ने लगे।

"भूख की भट्ठी में सोचने और समझने की ताकत जल-भुनकर खाक हो जाती है बबुआ ! लोग पिछले वर्ष की पकी ईंटें उड़ा-उड़ाकर लाने लगे। मन्दिर बनाने की नीयत से रामजी गुसाईं ने कई वर्ष तक रक़म इकट्ठी की थी और दस-बारह महीने पहले ईंटों का भट्ठा लगवाया था। राजमाता ने मुफ़्त की लकड़ी दिलवा दी थी तब भट्ठा पका था। अब की समय साल ख़राब देखकर गुसाईं ने मन्दिर खड़ा करने का अपना विचार स्थगित कर रखा। पेट जलने लगा तो वही ईंटें उठा-उठाकर लोग लाने लगे। बताऊँ, क्या करते हैं ये ईंटों का ?"

जैकिसुन ने संकेत से हामी भरदी। ८० साल वाले उस दुर्भिक्ष का जिक्र तो बूढ़ों के मुँह से उसने जब-तब सुना था, लेकिन इस बारे में तफ़सील की कोई बात जैकिसुन को कहाँ मालूम थी।

वह बटेसरनाथ की ओर ग़ौर से देखता रहा। लम्बी दाढ़ी की घनी छाँह में गौरैया का चूज़ा दिखायी नहीं पड़ता था। घुटनों तक पहुँचती धोती का मटमैलापन धवल चन्द्रिका के आतंक से सहमा-सहमा-सा लगता था। उँगलियों के नखों की सफ़ेद गद्दियाँ उस उज्ज्वल प्रकाश में

अच्छी तरह जगमगा रही थी।

जैकिसुन ने परछाईं में बाबा के होंठ खुलते देखे तो मन को कानों मे डाल दिया।

बाबा ने कहा :

"बताऊँ, क्या करते थे उन ईंटों का ?

"एक ईंट का वजन उन दिनों कम-से-कम तीन सेर होता था। जो ईंटें हल्की आँच मे पकी होतीं, लोग उन्हें ही उठाते। घर मे औरतें ईंट का चूरन बनाती पहले, पीछे उस चूरन का महीन पिसान तैयार कर लेतीं। आम, जामुन, अमरूद, इमली वगैरह की पत्तियाँ उबालकर पीस ली जातीं। पाँच जने अगर खानेवाले हुआ करते तो ईंट का एक सेर पिसान दो सेर उबली पत्तियों में मिलाया जाता; कहीं यह पिसान पत्तियों में एक-चौथाई-भर डाला जाता। आम की गुठलियों का पिसान भी इसी तरह बरता जाता।

"घासों का कहीं पता नहीं था। दूब बिलकुल सूख गयी थी। मामूली पौधों का भी यही हाल था।

"दूबों की जड़ें खुरपी से खोद लाते लोग, उबाल-उबालकर उन्हें चबा जाते।

"इन सबके बाद पेड़ों की छाल का नम्बर आया।

"मैं काफी छतनार हो आया था। जवानी के दिन थे। कन्धों पर मोटी-मोटी तीन शाखाएँ खड़ी थीं। डालों, डालियों और टहनियों की शुमार ही क्या ! अब ठेठ दुपहरिया के वक़्त भी मैं अपनी छाँह से दो-ढाई कट्ठा दायरा धरती का अनायास ही घेर लिया करता। धूप, वर्षा और ओस-पाला से बचने के लिए अब मनुष्य ही नहीं, दूसरे भी कई प्राणी मेरे नीचे आते। हर साल दो-चार बार पंचायत भी बैठने लगी। चरवाहों और चरवाहिनों के लिए तो मैं घर से भी ज्यादा प्यारा अड्डा बन गया। आसपास खेतों मे काम करने वाले मजदूर मेरी छाँह में आकर बैठते और मालिक-गृहस्थ के यहाँ से आया हुआ रूखा-सूखा

कलेवा पाते। ढाई पहर की चिलचिलाती धूप में हलों से खुलते ही बैल दौड़कर यहाँ आ जाते। भैंसें घंटों बैठकर यहाँ जुगाली करती रहती। कैसी भी जल्दी में क्यों न होते, बटोही बिना सुस्ताये यहाँ से आगे नहीं बढ़ते।

"राउत का स्वर्गवास हो चुका था। अब तेरा दादा मेरी देखभाल करता था। और, अब मैं नाबालिग थोड़े था कि किसी की निगरानी का मुहताज रहता? दरअसल मैं इस लायक हो चुका था कि बस्ती रुपउली के बाशिन्दों की खोज-ख़बर रख सकूँ...

"अकाल की भीषण घटनाओं का मुझे अच्छी तरह पता था। आसपास के इलाकों में उपज का जैसा बुरा हाल था, वह क्या मुझसे छिपा था? भूखे चरवाहे मेरी डालों पर देर-देर तक आड़े-तिरछे खडे रहते और कच्ची-दुद्धी फलियाँ चबाया करते। पीछे उन्होंने टूसों पर भी हाथ साफ़ करना शुरू किया। मेरे पत्तों में, छालों में, टूसों मे, कच्ची फलियों में लासा की थोड़ी-बहुत मात्रा होती है। इस लासा के कारण बेचारों की जीभ और तालू अधिक देर तक चालू नही रह पाते थे; लिहाजा चरवाहों से मुझे जल्द ही छुटकारा मिल जाता था।

"लेकिन इन छुटकारो से मैं खुश थोड़े होता रहा? मुझे अपने पर खीझ उठती; बेहद परिताप होता! क्यों लासा दिया विधाता ने मेरे रगों-रेशों में? हाय, मैं भूखे पेटो की जलन जी-भर मिटा पाता! काश, कोई आकर मुझ पर तेल छिड़क जाता!

"मुसीबत में अगर किसी के काम न आया तो वह जीवन बेकार है बेटा! भूख ने लोगों की अँतड़ियों का रस सोख लिया और मैं वेहया हरा-भरा यह सब देखा करता! बेचैनियों का तूफान उठा करता मेरे अन्दर; धरती पर काफ़ी गुस्सा आता कि मेरी जड़ों को तो वह अब भी रस पहुँचाया करती है परन्तु अकाल-ग्रस्त मानव-समाज की घोर उपेक्षा कर रही है...

"यह स्थिति मेरे लिए ही असह्य हो उठी आख़िर!

"वह महारानी विक्टोरिया का ज़माना था। ज़िले का कलक्टर गोरा था, पुलिस-सुपरिंटेंडेंट गोरा था। सब-डिवीज़नल अफ़सर गोरे थे। अदालत का बड़ा हाकिम गोरा था। ऊपर बड़ा लाट और छोटा लाट सब गोरे साहब। सूबाई दफ़्तर और हाइकोर्ट कलकत्ते मे थे। इन देहातों में एक तरफ़ तो ज़मीदारों का दबदबा था, दूसरी तरफ़ कहीं-कहीं नील के कारख़ानेदार अंग्रेज़ जमे बैठे थे। बाज़ारों और शहरों मे इधर तब तक मारवाड़ी बनिये नहीं आये थे; ख़रीद-फ़रोख़्त और जमा-पूंजी का सारा कारोबार देसवाली सौदागरों के ज़िम्मे था—तेली, सूंडी, कलवार, अगरवाला, रौनियार, बरनवाल, हलवाई वग़ैरह थे। सूद पर कर्ज़ देने का व्यवसाय ज़मीदार और सुखी किसान भी करते थे। ब्राह्मण, राजपूत, भुंइहार आदि कुछ जातियों के जवानों को फ़ौज मे जगह मिलने लगी थी।

"कलकत्ता जाकर इन देहातों का एक-आध आदमी टिक जाता था तो उसे दरवानी या चपरासीगिरी मिलती थी। उस युग मे अंग्रेज़ी पढ़ा-लिखा एक भी आदमी अपने गाँव मे नहीं था। थाना-कचहरी के काम कैथी और फ़ारसी लिपियों मे चलते थे।

"अख़बार कलकत्ते से दो-चार निकलते थे सो भी मामूली किस्म के; अंग्रेज़ अधिकारियों, गोरे व्यापारियों, फ़ौजी अफ़सरों और राजा-महाराजाओं की ख़बरें व सरकारी इश्तहारों से उनके पन्ने भरे रहते थे। देहाती जनता के दुख-दर्दों की आवाज़ नीचे-ही-नीचे घुटती रहती थी... आज तो तू उन दिनों की स्थिति के बारे मे अटकल ही लगा सकता है बेटा! आजकल पटने से नौ दैनिक निकल रहे है। दूर-देहात में कहीं कुछ होता है तो उसकी ख़बर बिहार-भर मे फैल जाती है। मान लिया सिर्फ़ ख़बरे छप जाने से कुछ नहीं होता। बातों से ही कलेजे की पीर नहीं मिटेगी किसी के, ठीक है। लेकिन, बाबू, सही घटनाओं को लाखों दिमाग़ों के अन्दर डाल देना कोई मामूली बात है रे?

"बस्ती-भर मे तीन ही परिवार ऐसे थे जिन्हें एक जून अन्त तक चावल नसीब होता रहा। एक था तर्कपंचानन का परिवार। दूसरा

परिवार था राजाबहादुर के पुरोहित का। तीसरा था एक राजपूत काश्तकार का घर। बाक़ी दस-एक घर ऐसे थे जिनमें सिर्फ़ बच्चों को भात मिलता था, सो भी मचलने पर—सयाने जुन्हरी, मकई, अरहर और चनों पर निर्भर थे। महीने मे एक-आध बार पतली खिचडी मिल जाती। बीस-पच्चीस परिवार ज़मीन बेच-बेचकर शकरकन्द से पेट की आग बुझाते थे...मध्यवर्ग का यही सिलसिला था। जो बिचले तबके के भी निचले स्तर पर थे, उन्हें शकरकन्द भी एक ही जून मिल पाती थी।

"तेरी दादी चतुर खेतिहर की बेटी थी। उपज का हाल खस्ता देखकर पूस में ही उसने अपनी दो भैंसें बेच डाली थीं। अब एक थी। जौ, मटर, मसूर, चने-जैसे अनाज काफ़ी भर रखे थे। पाँच कट्ठा खेत मे शकरकन्द की बेलें फैला दीं। सो, पन्द्रह मन अलुआ उपजा था। और यह सब तेरी दादी ने कातिक और फागुन के दरम्यान ही कर लिया था। माघ का महीना आया तो तीन कट्ठावाली दूसरी ज़मीन मे भी वह अलुआ रोपवा चुकी थी। तेरा दादा सुधंग आदमी था। वह हँसता रहा अपनी घरवाली पर—'जैसी जिसकी ख़ानदान, वैसे उसके लच्छन। मेरे बाप-दादे भोगिदर थे और तेरे पुरखा दलिद्दर; सो, बिना अलुआ के भला रुपउली में जी लगेगा तेरा ?'

"इस पर तेरी दादी निसाँस छोड़कर बोली थी—'देखते हो न ? इस बार फागुन मे ही कैसी मनहूसी छा गयी है ! रात को काला कौआ चीख़ता रहता है कर्र-कर्र। दिन के समय गीदड़ हुआँ-हुआँ करता है... अब-की भारी अकाल पड़ेगा, देख लेना ! घर में शकरकन्द पड़ा रहेगा तो अकाल से ले जायँगे किसी तरह..."

"और सचमुच, शकरकन्द ने तेरे दादा और दादी की बड़ी मदद की थी अकाल के उन दिनों में। एक जून वे लोग शकरकन्द उबाल-उबाल कर खाते थे, दूसरे जून मकई की लप्सी या और कुछ।

"दूसरे के खेतों में मेहनत-मजदूरी करके जीविका चलानेवालों का बुरा हाल था। जंगली साग-सब्जी, घास-जड़ और पेड़ों की पत्तियाँ

नोंच-नोंचकर वे खा गये थे। अब छाल की बारी थी।

"एक रात तीन-चार जने बसूला लेकर आये और मेरे कन्धों पर चढ़ गये। ऊपर की डालों पर छाल उतनी कड़ी नहीं थी, जड़ की ओर के तवे की छाल भी अभी उतनी कड़ी नहीं हुई थी।

"रात को वे इसलिए आये थे कि कोई देख न ले। तेरा दादा मेरा काफी ख़याल रखता था। एक पत्ता भी मेरा कोई तोड़ता तो उसकी आँखें लाल हो आतीं और गालियाँ बकने लगता। वह मुझे अपना बड़ा भाई समझता था। दो-चार दिनों के लिए कहीं बाहर जाता तो हाथ जोड़कर मेरी तरफ़ मुँह करके तब आगे बढ़ता।

"सो उस रात उन लोगों ने मेरी डालों पर से काफ़ी छाल उधेड़ ली और घर ले गये। दर्द तो मुझे बेहद हुआ लेकिन ख़ुशी भी कम नहीं हुई कि चलो, मैं एक हद तक भुक्खड़ों के काम आया। अकाल के उन दिनों में धरती तो जल ही रही थी, लोगों का कलेजा तक सूखकर सोंठ बन गया था। वैसी स्थिति में अपनी छाल किसी के पेट की जलन मिटा सकी, आज तक इसका मुझे अभिमान है बेटा !

"अगली सुबह वही हुआ जो होना था।

"तेरा दादा मेरी उघड़ी डालें देखकर पागल हो गया। दिन-भर वह गालियाँ बकता रहा और रात को चारपाई डालकर यहीं लेट गया। तब से लगातार चार महीने तक वह यहीं सोया। बड़ी कड़ी निगरानी थी बेटा !

"इस तरह भला कब तक पेट चलता ? खेत-मजदूर आख़िर गाँव छोड़कर भागने लगे।

"दरभंगा से दलसिंगसराय सत्रह-अठारह कोस है। अंग्रेज-बहादुर ने उतनी दूर रेल-लाइन बनवायी थी उन्हीं दिनों। हज़ारों आदमी काम पर लगाये गये थे। मजदूरी के कई रेट थे : दो पैसे, एक आना और हद-से-हद दो आना...अपनी रुपउली के दो जने किसी तरह उसमें काम पा गये थे।

"पता है तुझे, यह रेल-वेल सरकार ने किस नीयत से विछायी थी ?"

जैकिसुन बाबा की ओर देखने लगा। अंग्रेज़ों ने इस इलाके मे किस नीयत से रेल चलायी थी, सो बेचारा जैकिसुन क्या जाने ! उसकी आँखों में प्रश्न और कौतूहल के भाव जगमगा रहे थे। उसकी जिज्ञासा तीव्र हो उठी और चेहरा गम्भीर बन गया।

बाबा ने दाढ़ी पर हाथ फेरा और कहना शुरू किया :

"अकाल के उन सत्यानाशी दिनों में सरकार की ओर से प्रचार यह किया गया कि रिलीफ़ के तौर पर अधिकारियों को कुछ-न-कुछ करना तो था ही, इसी से पहले उस अंचल में रेल-पथ-निर्माण ही आरम्भ हुआ। राजराजेश्वरी महारानी विक्टोरिया अपनी प्रजा की इस दुर्दशा से इतनी द्रवित हुईं कि…"

बाबा को हँसी आ गयी। जैकिसुन की समझ में नहीं आया कि क्यों हँस रहे हैं बरगद बाबा।

कुछ क्षण बाद बाबा बोलने लगे :

"बनियों की रानी द्रवित हुई तो क्या हुआ ?

"हुआ यही कि डांडीमारो ने बटखरे का वजन अपने हक़ में बढ़ा लिया। यानी, हमारे इलाकों मे सरकार ने रेल चलायी तो उसके अन्दर जनता के हित की कोई भावना नहीं थी। भावना थी एकमात्र यह कि उसके अपने लाड़ले सौदागर कच्चा माल आसानी से ढो ले जा सकें और 'लाभ-शुभ' की अपनी सड़कों को चौगुना लम्बा-चौड़ा कर लें।

"चावल-धान, अरहर-खेसारी, उड़द-मूँग, चना-मसूर, लाल मिर्च और तम्बाकू, लड़ाई छिडने पर बकरों की तरह कटने के लिए फ़ौजी जवान, कारखानों-फ़ैक्टरियों मे खटने के लिए मजदूर, कलकत्ते की ऑफिसों के लिए चपरासी और दरवान तथा बाबू लोग…इन चीजों की ढुलाई की ख़ातिर रेलगाड़ियों से ज्यादा सुविधाजनक भला और क्या हो सकता था ? दूसरे-दूसरे इलाक़ों में भी रेल-लाइनें बिछायी जा रही थी।

"पहले तो आम लोगों की समझ मे नहीं आया कि यह हो क्या

रहा है।...कोट-बूट और टोपधारी फिरंगी साहब देसी बाबुओं और मज़दूरों के साथ रेलवे-लाइन के लिए जगह नापते फिरे; पीछे दोनों ओर से मिट्टी काटकर बाँध खड़ी की जाने लगी। बाँध तैयार हुई तो उस पर ईंट की रोड़ियाँ डाली गयीं, फिर साखू की सिल्लियाँ बिछी, तब कहीं आकर रेल के पत्तर बिछे। इसके बाद हड़हड़ाता हुआ और खड़े बम्बे से काला धुआँ निकालता हुआ एक मामूली इंजन आया जिस पर दो जने सवार थे। तमाशा देखने के लिए लाइन के किनारे-किनारे जगह-जगह भीड़ इकट्ठी थी। तेरा दादा भी दरभंगा जाकर पहला इंजन देख आया था।

"लेकिन वह अकाल थोड़ी दूर में सीमित नहीं था। अपने इस देश का समूचा पूर्वी हिस्सा भुखमरी की चपेट में आ गया था। हज़ारों परिवार बरबाद हो गये और लाखों की जान चली गयी।

"रेल-कम्पनी के लिए यह सुनहला मौक़ा था। कम-से-कम मजदूरी पर ज्यादा-से-ज्यादा काम करने की वह अनोखी आपाधापी थी बेटा! दिन-भर की कड़ी मेहनत के बाद एक दुअन्नी हाथ आती थी। चावल तो मिलते नहीं थे, जुन्हरी और मडुआ-जैसा मोटा अनाज मिलता था।

"बूढ़े, बच्चे और ढोर-डंगर...भुखमरी के सबसे बड़े शिकार यही थे। कई-कई दिनों का फ़ाका, बीच में कुछ मिला तो खा लिया। फिर फ़ाका, फिर कुछ मिला तो अन्दर डाल लिया...जो जिन्दा थे, उनको इस क्रम ने काफ़ी कमज़ोर बना डाला था। प्रिय-से-प्रिय व्यक्ति दम तोड़ देता तो लोग रोते नहीं थे। भूख की जलन में आत्मा झँवा गयी थी और आँसू गायब हो चुके थे।

"लाशों का बुरा हाल था। जब तक लोगों में ताक़त थी और काठ जब तक सुलभ थे तब तक मुर्दे जलाये जाते रहे। बाद में नन्हे बच्चों की लाशों की तरह सयानों की भी लाशें मैदानों में गाड़ दी जाती थीं। आगे चलकर यह भी असम्भव हो गया तो मुर्दों को यों ही मैदान के हवाले करने लगे। हवा में उन दिनों एक अजीब दुर्गन्ध भर उठी थी। भूख से

तड़पकर दम तोड़नेवालों में छोटी जातवालों की ही तादाद अधिक हुआ करती। शाम होते ही डर के मारे लोग घरों में बन्द हो जाते। देर तक लाशें अन्दर ही पड़ी रहती, उन्हें कोई उठानेवाला न होता। रात के वक्त गीदड़ और भेड़िये गाँव की गलियों और आँगनों का फेरा लगाया करते; मृतक की महक पाकर किवाड़ों की फाँक में अपनी थूथन अन्दर घुसाने की कोशिश से वे दुतकारे जाने पर भी बाज नहीं आते। गीधों, कौओं और कुत्तों का आपसी वैर-भाव इसलिए ख़तम हो गया था कि लाशों की कमी नहीं थी। मनुष्यों और पशुओं के कंकाल गाँव के बाहर इधर-उधर फैले दिखायी देने लगे...

"चिन्ता और शोक के मारे मैं सूखने लगा। टूसे निकलते जरूर, मगर अगले ही दिन जली हुई मूँगफली की शक़्ल के हो जाते। नये पत्तों की लाली जाने कौन पी गया! बाकी पत्ते हरियाली के लिए तरसा करते, अकाल की कृपा से भूरा-पीला और चितकबरा बदरंग उनके रेशों पर हावी हो आया। छालें सिकुड़ गयी, तने अकड गये। डालों को सूखा सताने लगा, टहनियाँ ठिठक गयी। जड़ के सिरे और सोर लाख कोशिश करके भी धरती माता से कुछ अधिक रस नहीं पा रहे थे।

"उसी अकाल मे मेरा पडोसी मर गया—अरे, वही बौना और कुबड़ा गूलर था न? सूख गया बेचारा! यों, उसकी आयु कम नहीं थी। लेकिन अकाल की आग उस बार उतनी न बरसी होती, तो अभी कुछ वर्ष वह और जिन्दा रहता रे! वह सूख गया तो कई दिनों तक मैं रोता रहा...मैं उसे ताऊ की तरह मानता था...तेरे तो ताऊ-वाऊ है नहीं, तू क्या समझेगा कि भतीजे के लिए ताऊ का स्नेह भला क्या अहमियत रखता है! है पता?"

जैकिसुन ने निषेध-मुद्रा मे माथा हिलाया। बेचारे को याद आया अपना बचपन, जब ताऊ-ताई के लिए दिल तरसता रहता था।

बाबा ने कहा :

"मुझे अब तक वह बुजुर्ग गूलर अच्छी तरह याद है।

"वह अकाल डेढ़ वर्ष तक जीवों और जन्तुओं की बलि लेकर आखिर रवाना हुआ—अपने पीछे रबी की फ़सलों का अम्बार छोड़ता गया, जो बच रहे उनके चुचके चेहरों पर हल्की ख़ुशी की गुलाबी रोली छिड़कता गया।

"लोग अब तक उस अकाल की चर्चा करते हैं। अस्सी वर्ष से पहले की घटना है यह। उसके बाद एक और वैसा ही प्रलयंकर अकाल पड़ा था, अब से पैंतालीस-पचास साल पहले..."

जैकिसुन समझ गया कि बाबा सन् सोलह के अकाल की बात कर रहे हैं अब। सन् तेरह सौ सोलह साल फ़सली, यानी १९०९ ई०।

७

इस बीच जैकिसुन को एक आदमी इधर आता दिखायी दिया। बाबा तो खैर, किसी दूसरे को नज़र आयेगा नहीं। हाँ, बटोही को यह ज़रूर जिज्ञासा होगी कि इतनी रात गये बरगद के तले कोई क्यों बैठा है।

बाबा ने बातें बन्द रखीं।

राहगीर नज़दीक आया।

मटमैली धोती, गोल-कट हाफ़ अंगा। पैरों में देहाती पनहीं। खुला माथा। हाथ में लाठी।

पेड़ के पास आकर वह ठमक गया तो जैकिसुन ने पूछ दिया—"कहाँ जाओगे?"

"पंडौल"—जवाब मिला।

"आये हो कहाँ से ?"

"शिवराम से। माचिस है ?"

"जरूर है..."

जैकिसुन उठा। सोते हुए जीवनाथ की अंटी टटोलकर दियासलाई निकाल लाया।

आगन्तुक ने पाकिट से दो बीड़ियाँ निकाली तो जैकिसुन ने कहा—"नही भाई, मैं नही पीता हूँ बीड़ी-सिगरेट।"

फिर उसने कसैली का टुकडा निकालकर कहा—"यह तो खाओगे?"

जैकिसुन ने हाथ बढाकर सुपारी ले ली और पूछा—"कौन आसरम हैं भाई साहब आप ? बैठिये, ज़रा सुस्ता लीजिये।"

राहगीर ने बतलाया, वह केवट है। उसके चाचा ने कसाई के हाथ अपना बूढा बैल बेच डाला है। गाँव के लोगों को मालूम हुआ तो खुसुर-फुसुर होने लगी। पचों ने कहा, परास्चित लगेगा अगर बैल नही लौटा तो...वह जा रहा है बैल वापस लाने। दिन बड़ा तपता है आज-कल, रात के वक्त चला है और सुबह ठंढे-ठढे में लौट आयेगा। बैठेगा तो अलसा जायेगा...

अन्त में उसने जैकिसुन से पूछ लिया—"आप कौन बिरादरी हैं?"

"यादव हूँ और वह भुइँहार हैं...।" सोनेवालों की तरफ़ इशारा करके जैकिसुन बोला।

बीडी का धुआं अन्दर घोंटकर आगन्तुक ने कहा—"हवा वन्द है, आपकी भी नीद इसी से उचट गयी है न ?"

"हूँ"—जैकिसुन नाक के सहारे बोला और हाथो में दियासलाई की डिबिया को लोकने लगा। बटोही ने अपने पैर आगे बढा दिये।

अब आकर वह बाबा के करीब इतमीनान से बैठा तो बटेसरनाथ ने मुस्कराकर कहा :

"रंग-ढंग से मालूम होता था कि यह जवान गाँव से बाहर म— नौकरी करता है...देखा नही, बातों के लहजे से शहरी नफ़ासत

थी ?

"शहर की बू-बास बोलचाल से कहीं परगट हो, वहाँ देहातियों को नाक-भौंह नहीं सिकोड़नी चाहिए बाबू ! शहर आसमान में नहीं हुआ करते। गाँव की तरह शहर भी इसी भूमि पर आबाद हैं। पढ़े-लिखे काफ़ी ऐसे लोग हैं जो नासमझी के कारण गाँवों और शहरों को परस्पर प्रतिकूल बतलाते हैं। खाना और कपड़ों की तंगी न रहे, सभी लिख-पढ़ जायँ, बाहर जाने-आने की सुविधा मिले, काम और आराम का बदस्तूर सिलसिला हो, मनोरंजन के साधन सुलभ रहें, तो फिर इन देहातों का ढाँचा ही बदल जायगा। आलस, पिछड़ापन, अभाव, अशिक्षा, अस्वास्थ्य, गन्दगी आदि दुर्गुण हमेशा नहीं रहेंगे। अभी तो शहरों में भी नरक है और गाँवों में भी। मुट्ठी-भर लोग होंगे जिनके लिए देहातों में भी स्वर्ग-सुख सुलभ है और नगरों में भी।"

जैकिसुन हथेली पर उँगली गोद-गोदकर कुछ लिखने लगा तो बाबा ने ताड़ लिया। वह बोला :

"गाँव और शहर की बातें अभी छोड़ता हूँ; अपने बारे में सुनाऊँ अभी। है न ?"

जैकिसुन ने स्वीकार की मुद्रा में माथा हिलाया।

बटेसरनाथ ने कहना आरम्भ किया :

"टुनाइ पाठक का दादा था जद्दू पाठक। दादा का सगा। वह काफी बुड्ढा होकर मरा। मरते वक्त वह तेरे दादा से कहता गया कि ध्वजा खड़ी करके बरगद की वेदी पर ब्रह्म बाबा की स्थापना करो। तेरे दादा का नाम था अधिकलाल राउत। अधिक भाई ने मेरी जड़ों के चारों तरफ गोल चबूतरा बाँधा और एक दिन धूम-धाम से ध्वजा गाड़कर ब्रह्म की स्थापना कर दी।

"पाठक के घराने में तीन सौ वर्ष पहले एक अकबाली पुरुष हुए थे। नाम था चक्रपाणि पाठक। अपनी सूझ-बूझ और बहादुरी से उन्होंने नेपाल के राजा को रिझा लिया तो उसने उन्हें अपना सेनापति

मुकर्रर किया। पांच वर्ष भी नही बीतने पाये थे कि किसी राजपूत सरदार ने अपनी फ़ौज लेकर इधर से अचानक हमला बोल दिया। राजा चीन की ओर भाग गया, सेनापति आखिर तक जूझा और वीर-गति प्राप्त की; रानी हमलावर की शरण में चली आयी...चक्रपाणि पाठक मरकर ब्रह्म हुए। दो सौ साल तक वह एक पीपल पर रहे, पच्चीस वर्ष आंवले के पेड़ पर और पचहत्तर वर्ष एक पाकड पर। कुछ वर्षों से यह ब्रह्मबाबा बे-घर थे, क्योंकि जीवछ और कमला में एक बार जोरो की बाढ़ आयी और बाढ़ हटी तो इलाके के बहुत सारे दरख़्त सूख गये। तभी से पाठक बाबा आश्रयहीन हो गये थे।

"जद्दू पाठक की नजर मुझ पर बहुत दिनों से थी। वह जिस वर्ष मरा, महीने मे दो बार गांव में आग लगी थी। बुड्ढे को ब्रह्म ने सपना दिया...'तीसरी बार जो आग उठेगी वह तेरे ही घर से उठेगी और समूची बस्ती को खाक कर डालेगी, अग्निकाड के बाद महामारी को बुलाऊँगा मैं। समझ क्या रखा है तूने ?'

'इस स्वप्न से वह बेहद डर गया और अधिकलाल भाई को बुलाकर समझाया-बुझाया; वह राजी हो गये। तब से लेकर पांच वर्ष तक मैं बरहम बाबा का अड्डा बना रहा।

"भक्ति-भाव, पूजा-पाठ और धमा-चौकडी के वे दिन भी क्या भूलने लायक है बबुआ ? नही, बिलकुल नही !

"अब लोग मुझे स्नेह और प्यार की निगाहो से नही, आदर और श्रद्धा की निगाहों से देखने लगे। मेरे प्रति जन-साधारण के अन्दर अब तक जो भावना चली आयी थी, वह मानो एक ही दिन मे बदल गयी।

"पहले लड़के घटों मेरी डालो पर उछल-कूद मचाते रहते...चाकू की नोक से बिना किसी झिझक के निशान बनाया करते...किस्म-किस्म के निशान : मुरली बजाता हुआ मुकुटधारी कृष्ण, खिलता हुआ कमल; एक-दूसरे का हाथ पकड़े विह्वल स्त्री-पुरुष; बछड़े को दूध पिलाती हुई

गाय, बाँसों के झुरमुट में कोयलों की वहार, कन्धे पर बहँगी और उसके दोनों ओर छिक्कों पर सौगात का चँगेरा ढोता हुआ भरिया...बकरी की सूखी मींगणियों से गोटियों का काम लेते हुए चरवाहे मेरी छाँह में 'सतधरा' खेलते। हँसली की शकल में आधा-गोल बाँधकर सुननेवाले बैठते और सामने बैठकर सुनानेवाला पहरों कहानियाँ कहा करता या गानेवाला गीत अलापता रहता। गाय-बैल-बकरी चरानेवाली लड़कियाँ एक की पीठ-पीछे दूसरी और दूसरी की पीठ-पीछे तीसरी बाकायदा बैठतीं, बाल फैलाकर बड़ी मुस्तैदी से जूँ निकाला करती। बातों या गीतों का क्रम तो खैर चलता ही रहता। जिसकी घरवाली रूठकर मायके चली गयी होती, वह यहाँ बैठकर देर तक मन-ही-मन अपनी आलोचना किया करता। सयाने, अधेड़ और बूढ़े आते, बाँह का तकिया बनाकर लेट जाते और ढेरों बातें करते-करते नाक बजाने लगते।

"बड़ी उम्रवालों का मैं बेटा था, जवानों-अधेड़ों का भाई और छोटों का चाचा। सारी बस्ती के लोग मुझे प्यार करते थे। भाभियाँ और बहनें मेरे बदन पर घड़ी-घड़ी-भर हाथ फेरा करती, बहुएँ और बेटियाँ झुकी डालों में लटककर अँगड़ाइयाँ लेती, हौले-हौले टहनियाँ सहलाती, टूसे सूँघती और हरे-ताजे पत्ते गालों से छुआती। बूढ़ी कोई इधर से गुजरती तो शायद ही कभी रुकती। हाँ, गरमी के दिन होते और दुपहर का समय होता तो रुक भी जाती।

"लेकिन पाठक बाबा की ध्वजा जब से यहाँ खड़ी हुई, तब से मेरे प्रति सभी की भावना बदल गयी। श्रद्धा, भक्ति, भय और आतंक... अब मैं प्रिय नहीं था, पूजनीय था—वन्दनीय और माननीय था। सोमवार और बुधवार के प्रातःकाल स्त्रियाँ आकर मेरी वेदी पर चावल की पीठी के घोड़े खड़े करती और पिंडियों पर दूध ढालती, अच्छत और फूल चढ़ाती, परिवार की भलाई के लिए मिन्नतें मानती।

"किसी के घर कोई शुभ कार्य होता तो यहाँ आकर पाठक बाबा का पूजन अवश्य कर लेता। मनोरथ पूरा होने पर लोग आकर धूमधाम से

मनौतियाँ चढाते। रेशम की झूलें, कोढिला के बने सिरमौर और मंडप, जरी-गोटे की मालाएँ, पीतल-काँसे की घंटियाँ, लाल-इकरंगे का टुकडा...धूप-दीप, फूल-फल, अच्छत-दूब, दूध और गंगाजल, बेल और तुलसी के पत्ते...फर-फरहरी, मिठाइयाँ, पकवान, पान-मखान...ढोल-ढाक-पिपही! बारह महीनों में बीस-पच्चीस बकरे भी बलि चढते थे—मचलते मुंडों और तड़पते धड़ों की खूनी पिचकारियों से मेरा सीना सुर्ख हो उठता था, रगों में बिजली दौड़ जाती थी, क्षण-भर के लिए पत्तों का हिलना रुक जाता था। मनौतियाँ चढानेवाले श्रद्धालु लोग घडी-दो-घड़ी की पूजा-प्रार्थना के बाद घर चले जाते तो मौका पाकर दिन के समय कुत्ते और रात के वक्त गीदड मेरे बदन पर जमी बलिदानी लहू की मलाई चाटा करते। चींटियों और झींगुरों का भी इसमें साझा हुआ करता। छितरे-छितराये अच्छत गोरैयों की किस्मत में, पकवानों और मिठाइयों की झरी-झूरी कौओं के भाग में। बकरे का धड मनौतीवाला टाँग ले जाता और मूंडा ले जाता वह आदमी जो कि बलि के पशुओं का गला काटा करता। यह काम उन दिनों जैनरायन का ताऊ किया करता था और अब भानजा करता है। मेरे सामने ब्रह्म बाबा के निमित्त बलि होनेवाले ये वही बकरे होते थे, जिन्हें मैं भली-भाँति पहचानता था और इसी से उनकी हत्या के समय मेरी तकलीफ और बढ जाती थी। पैदा होने के दस रोज बाद से ही वे मेरी गोद में खेले होते थे; शोखियों से भरी उनकी उछल-कूद, उनके मुलायम खुरों की खुशगवार धमक, छोटे-छोटे नथनों की उनकी हल्की फुरफुराहट मेरे दिल की धड़कनों का हिस्सा बन चुकी होती थी...और साल-दो साल बाद वही बकरे जब नहलाकर मेरे सामने खडे कर दिये जाते तो उनका आतंकित चेहरा देखकर मेरा कलेजा सूख जाता भाई! पंडित यजमान से पहले तो बकरे की पूजा करवाता, फिर हथियार की। पीछे पंडित के अनुसार यजमान दोनों हाथ जोडकर बकरे से कहता—

'यज्ञ के निमित्त पशुओं की सृष्टि की विधाता ने

यज्ञ के निमित्त ही उन्हें मार गिराया जाता है
इसी कारण मैं तुम्हें मरवाऊँगा
यज्ञ की हिंसा हिंसा नही हुआ करती...'

"और मखौल तो देख, इस बलि के लिए घेर-घारकर बकरे से उसकी खुद की भी मंजूरी ले ली जाती। यानी, जब तक उसके मुँह से 'मे-मे' की आवाज नही निकलवा लेते, तब तक बकरे की गर्दन पर हथियार नही पडता।

"ब्रह्मबाबा यह बलि जो लेते थे, सो मुझे कभी नहीं अच्छा लगा बेटा, सच कहता हूँ। यों तो पाठकजी महाराज ने मेरी सारी रौनक छीन ली थी पाँच वर्षों तक, लेकिन समय-समय पर बकरे जो कटते थे वह कोई मामूली साँसत नही थी अपने लिए। भारी साँसत थी बबुआ! तूने देखे है न बकरे कटते हुए?"

जैकिसुन ने 'हाँ' की मुद्रा मे सिर हिलाया।

जैकिसुन वैष्णव नहीं था। वह मछली, मास, केंकडा, धान के खेतों का चूहा, खरगोश, कछुआ और डोका—सब-कुछ खाता था, जो कि उसके इलाकों मे दूसरे लोग खाया करते थे। मगर बकरों की बलि का वर्बर नजारा उसकी बर्दाश्त के बाहर की बात थी। फूहड़ लुहार की बनायी हुई अनगढ़ हँसिया लेकर लोग मिनटों तक एक-एक बकरे की गर्दन रेतते रहते हैं, उसकी आँखें पथरा जाती हैं और जीभ बाहर निकल आती है।

बलि का दृश्य जैकिसुन के लिए सदा ही असह्य रहा। उसने बाबा की वेदना का अन्दाज अच्छी तरह पा लिया था। अब वह तनकर बैठ गया और आगे की बातें सुनने की प्रतीक्षा में वृद्ध की ओर गौर से देखने लगा।

बाबा ने साँस को स्वाभाविक गति पर लाकर जैकिसुन की तरफ देखा और आहिस्ते से कहा:

"हमारी बिरादरी की वनस्पतियों पर भूतों, पिशाचों, यक्षों, देवों

तथा ब्रह्मों की यह 'दया-दृष्टि' कोई नयी बात नही है बेटा! इनका और हमारा सदैव सम्पर्क रहा है। एक वह भी युग था जबकि हमारे पूर्वज मनुष्य की ताजा अँतड़ियों की माला पहना करते थे, एक वह भी युग था कि हमारी वेदियों पर कैदी राजाओं की आँखे निकालकर चढ़ा दी जाती थी; एक वह भी युग था कि ताजा कटी उँगलियों का हार पहनाकर वटवृक्ष का शृंगार किया जाता था, नरमुड और आदमी का लहू यक्षों, देवों और ब्रह्मों के दबाव मे आकर जाने कितनी बार हमारे पुरखो को स्वीकार करना पड़ा है! मुझे तो खैर, बकरों की बलि से छुटकारा मिल जाता था। हाय, हमारे पूर्वजों को जाने कैसी-कैसी बीभत्स और रोमांचकारी परिस्थितियों से गुजरना पड़ा था!"

जैकिसुन की धड़कन काफ़ी बढ़ आयी थी। ऐसा लगता था कि वह कोई ख़ौफ़नाक सपना देखकर अभी-अभी जाग पड़ा है। चेहरा बेहद गम्भीर हो गया था, आँखों का तेज डूब-सा रहा था और अमल-धवल यौवनवाले जेठ की पूर्णिमा इस वक्त जैकिसुन के लिए सिवाय एक विराट् शून्य के और कुछ नहीं थी।

बरगद बाबा को महसूस हुआ कि नाहक़ उन्होंने नर-बलि वाली ये बातें जैकिसुन से कही। खैर, जो हुआ सो हुआ!

अब जैकिसुन की पीठ पर अपनी बड़ी हथेली रख दी तो उसका अनमनापन टूटा। मन अपने काबू में आ गया तो चेहरे पर रौनक आ गयी।

जैकिसुन ने बाबा की तरफ़ देखा तो उन बड़ी-बड़ी आँखों में अभयदान की भावना छलक रही थी।

उसकी पीठ पर से अपनी हथेली वापस लेकर बाबा ने स्नेही स्वरों में कहा:

"यह तुझे मैंने हजारों वर्ष पुरानी बातें बतलायी है। मनुष्यों की बलि चाहने वाले यक्ष-गन्धर्व, देव-देवियाँ और ब्रह्म अब बाहर नहीं रह गये—मोटी जिल्दों वाले पुराने पोथों की बारीक पंक्तियों के अन्दर आज

वे नजरबन्द हैं। राजाओं, पुरोहितों, सामन्तों, सेठों और तीर्थंकरों की बातों का बढ़ा-चढ़ाकर बखान करनेवाले बहुत सारे विद्वान सुदूर अतीत की उन क्रूर घटनाओं पर अब भी पर्दा डाले हुए हैं, वह उन लोगों के लिए सत्ययुग है, स्वर्णयुग है ! साधारण जनता का स्वर्णयुग तो अभी आगे आने वाला है बेटा !

"तो, खूब पूजा होने लगी मेरी उन दिनों।

"लेकिन, मैं बेहद तकलीफ में पड़ गया। कोई खुले दिल से मेरे नजदीक नहीं आता था। कोई मुझे छूता नहीं था। रात के वक्त दर्जन-बीस पंछी जरूर आ जाते थे, दिन-दुपहरिया में एक-आध गाय या भैंस आकर जरूर खड़ी हो लेती थी, मगर आदमी मुझसे दूर-दूर रहता था। कड़ी धूप से बचने के लिए राहगीर अब भी मेरी छाँह में आ बैठते, परन्तु ध्वजा, वेदी, लिभड़ा हुआ सिंदूर, खून के निशान वगैरह की ओर घूर-घूरकर देखा करते। बातचीत में तकल्लुफ। हँसी और मुस्कान में तकल्लुफ। छींकने-खाँसने में तकल्लुफ। डर के मारे कोई थूकता नहीं था यहाँ। नेह-छोह की बातों पर वैसी अजीब पाबन्दी अपने-आप जाने कैसे हावी हो आयी थी ! जोरों के ठहाके, मीठी-महीन खिलखिलाहट, प्यार और भलाई में पगी कानाफूसी, जोश-भरी ललकार...इनके लिए मैं उन पाँच वर्षों में किस हद तक तरसता रहा, बताना मुश्किल है बेटा !

"जेठ महीने की अमावस को हर साल सुहागिन औरतें बरगद के तने में हाथ-कते धागों के फेरे डालती हैं। जब से 'बरहम महाराज' की कृपा हुई मुझ पर, तब से उन्होंने भी मुझसे नाता तोड़ लिया। इसमें तो मेरा कलेजा ही टूक-टूक हो गया बेटा ! पाठकों के इस खानदानी ब्रह्म पर मैं अन्दर-ही-अन्दर सुलग उठा...पहले कैसी मस्ती कटती थी ! कितनी चहल-पहल, कितना शोर-गुल रहता था यहाँ ! सधवाएँ सुहाग के लिए उस रोज फेरे डालती थीं मेरे चारों ओर—पायलों की महीन और कड़ों की मोटी झंकार मेरी रग-रग में सिरहन भरती रहती थी। उन सुहागिनों की मिठास-भरी बातें पत्ते झुक-झुककर सुना करते।

अपने नटखट बच्चों को कड़ी भौंहों के इशारों से उनका वह डाँटना दूसों को संजीदा रखने के लिए काफी हुआ करता। किसी कमसिन बहू के भोलेपन पर उनकी जब्त मुस्कान इन ढीठ टहनियों के लिए सालाना सीख थी। हाय, उस ब्रह्मराक्षस ने मुझे कितने बड़े सौभाग्य से वंचित कर दिया था! एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं, पूरे पाँच वर्षों तक मेरे सीने पर वह पिशाच सवार रहा और जेठ की पाँच अमावस्याएँ रो-रो कर काटी रे बबुअन!

"फिर, उस कम्बख्त से मेरा पिंड कैसे छूटा?"

"बतलाओ न!"—जैकिसुन मन-ही-मन बोला।

"बतलाता हूँ..."

कुछ देर रुककर बाबा ने कहा :

"जद्दू के लड़के मद्धू की शादी पचपन वर्ष की आयु तक नहीं हुई। वह अपने बरहम बाबा को पाँच बार बकरे की बलि दे चुका, तब भी कोई लड़कीवाला उसे पूछने नहीं आया। अब अपने खानदानी ब्रह्म के बारे में मद्धू की श्रद्धा डिगने लगी। ज्योतिषी, साधु-सन्त, ओझा-गुनी, ओघड-औलिया—जो भी मिलता, उससे मद्धू अपनी शादी की बाबत पूछा करता।

"फुलपरास-बाजार के करीब एक गाँव में एक औघड था। साठ-पैंसठ साल की उम्र रही होगी, लेकिन देखने में चालीसा पट्ठा लगता था। जात का डोम होने पर भी शकल-सूरत में बाबू-बबुआन की नाक काटता था। मूँछ-दाढी बडी-बड़ी, लेकिन घनी नहीं। माथे पर मामूली जटाएँ। बदन का रग गेहुँआ। आँख बडी-बड़ी, पुतलियाँ भूरी। कपार चौडा और नाक नोकदार व खड़ी...मालूम न हो तो कौन भला डोम बतलाता? वह छोटी आयु में घर से निकल गया था। माँ-बाप नील के किसी गोरे कारखानेदार की छत्रछाया में कुछ समय रहे थे। तीस साल बाद जब वह अपनी जन्मभूमि को लौटा तो साथ में एक नेपाली सुन्दरी थी। परिवार से अलग, गाँव से दूर झोपड़ा बनाकर

दोनों रहने लगे । एक लडका हुआ ओर वस ! यह औघड बावा आस पास के इलाकों में जल्द ही मशहूर हो गया । जहाँ कहीं भूत-प्रेत का उपद्रव उठ खडा होता, जहाँ कहीं देव-देवी उत्पात मचाते, जहाँ कहीं ब्रह्म-कर्णपिशाची-चुडैल आदि की खुराफातें उभरती, वहाँ औघड बाबा की गुहार होती । उस सिद्ध डोम के पहुँचते ही आधी गड़बड़ी दुरुस्त हो जाती, जटाधारी औघड जोरों से चिमटा पकडकर जब "ओ ऽऽऽ ड् अलख निरजन भग् सा ऽऽऽऽ ले ऽऽऽऽ !" की ऊँची आवाज मारता तो वाकी खुराफातें भी खतम हो जातीं । काफी दान-दक्षिणा और भेंट-सौगात देकर लोग उसे विदा करते । अपनी इष्टदेवी, 'ककाली माई' के लिए वह एक बकरा और पाँच बोतल दारू तो पहले ही तलब कर लेता था । ऊँची जात वाले डाह के मारे उसे डोमड़ा कहा करते थे ।

"मद्धू इस डोमडा का गुण-गौरव पहले ही सुन चुका था । अब अपने ब्रह्म से उदास होकर वह उसके पास जा पहुँचा । सारी बातें ध्यान से सुन कर औघड़ बोला—'तुम्हारा बरहम भारी पाजी है । बरगद का सहारा उसे जब तक रहेगा तब तक तुम्हारी शादी नहीं होगी । कहो, तो चलकर मैं उसे कैद कर लाऊँ ।'

"मद्धू राजी हो गया ।

"कुछ दिन बाद डोमडा रुपउली आया ।

"अधिकलाल भी ब्रह्म की ओर से उदास थे । छोटी जातवालों की पाठकों के उस ख़ानदानी 'बरहम' मे उतनी दिलचस्पी नहीं थी जितनी कि उनके अपने देवताओं – भुइयाँ महाराज, सलहेस राजा और दीना भद्री वग़ैरह—में ।

"कंकाली माई का नाम लेकर औघड़ ने एक ही साँस में देसी ठर्रे का अद्धा चढाया; महाप्रसाद तैयार किया था, जी-भर उसे भी पा लिया । इत्मीनान से चरस का दम लगाया । फिर चिमटा और झोली सँभालकर मेरे करीब आया...

"पहले उसने वेदी पर चिमटा फटकारा और जोरो से आवाज मारी, —'ओ ऽ ऽ ऽ ड् अलऽख् निरंजऽन् भग् सा ऽ ऽ ऽ ऽ ले ` ` ` ` !!!' बाद मे ध्वजा उखाड़कर अलग गिरा दी। झोली से खुरपी निकालकर जहाँ-तहाँ से चबूतरा खोद डाला। आख़िर में लोहे की एक कील निकाली औघड़ ने।

"तब तक भारी भीड़ इकट्ठा हो गयी थी। सभी दम साधकर औघड़ का करतब देख रहे थे और मैं ख़ूब ख़ुश हो रहा था।

"उस कील को औघड ने मेरे सीने में ज़रा-ज़रा ग्यारह दफे ठोका —ठोककर निकाल लेता और देख लेता; ग्यारहवीं बार बोला : 'चकर-पाइन पाठक ! अब तुम इस कील की हिरासत में आ गये बाबू ! चलो, अब मेरे साथ...'

"औघड़ वह कील साथ लेता गया। रुपउली से उत्तर मकरमपुर के नज़दीक जीवछ की पुरानी धार के किनारे एक बुड्ढा पीपल था, उस कील को बाबाजी ने उसी के सीने में ठोक दिया...हथौड़ी की चोट से। जब समूची कील ठुक चुकी तो औघड भभाकर जोरों से हँसा था। रुपउली से पचासों जने तमाशा देखने गये थे।

"इस तरह मुझे उस ब्रह्मराक्षस से छुटकारा मिला और अगले ही वर्ष मद्धू पाठक का ब्याह एक लँगड़ी लड़की से हो गया था।

"दहशत के मारे फिर भी दो-तीन महीने तक लोग खुलकर यहाँ नही आते थे। लेकिन आहिस्ते-आहिस्ते बन्दिशें टूटने लगी, चरवाहों का अड्डा फिर जमने लगा। बच्चे बे-झिझक यहाँ फिर खेलने लगे। जवान और अधेड बेतकल्लुफी से यहाँ फिर डटने लगे। बुड्ढों की यह आराम-गाह फिर बदस्तूर चालू हो गयी। छाँह मे बैठकर बहू-बेटियाँ फिर स्नेह-छोह की मोटी-महीन जालियाँ बुनने लगी और मैं अपना सहज-स्वाभाविक जीवन पाकर फिर उसी तरह झूमने लगा।"

जैकिसुन की आँखें ख़ुशी से चमकने लगी।

गौरैया के बच्चे ने मुलायम पंख हिलाये, उसकी नरम चंगुलों की

मधुर खरोंच का अनुभव करके बाबा ने कहा :

"बेटा, जरा फ़ुरसत दे मुझे !"

वह उठकर चूजे को उठाये हुए अपने बाँके पेड की तरफ गये, डालों और टहनियों में गायब ।

.

.

८

थोडी देर बाद बाबा पेड से बाहर निकल आये, गोरैया का बच्चा साथ नही था ।

बैठ गये और बोले :

"वह अपने घोसले मे पहुँच गया है । तुझे नीद तो नही आ रही है ?"

जैकिसुन ने सिर हिलाकर बतलाया कि उसे नीद नही आ रही है।

सचमुच उसकी आँखों मे कही पता नही था नीद का ! जाने आज उसकी नीद कहाँ उड गयी थी ! दिन-भर भटका था, लेकिन थकावट नही महसूस हो रही थी···

बाबा ने कहा :

"रात अब दुपहर से ज्यादा हो आयी है । बाते अभी काफ़ी बाकी है । आज सब बातें न भी बतला सकूँ तो क्या कोई हर्ज रहेगा ?"

जैकिसुन ने माथा हिलाकर इशारे से बतलाया—'नही ।'

बाबा ने बतलाया :

"देख, पूर्णिमा की चाँदनी खिली हो और लोग जागे न हों, तो तू बेखटके मेरे यहाँ चले आया करना; घड़ी-आध घडी, पहर-आधा-पहर

बैठकर मेरी बातें सुन लेना और फिर अपना चल देना ।"

जैकिसुन ने संकेत से मंजूरी जतलायी ।

बाबा बोला :

"पिछले भूकम्प ने मुझे गिरा नही दिया होता तो अब तक मैं और बढ गया होता। वह दुर्घटना मेरी तन्दुरुस्ती को पी गयी और हमेशा के लिए मुझे अपाहिज बना गयी । कभी-कभी अपना जीवन मुझको भार प्रतीत होता है और तब अपनी मौत मनाने लगता हूँ, लेकिन इस बस्ती का कोई नही चाहता कि मैं खत्म हो जाऊँ । रुपउली का एक-एक बच्चा मुझे प्यार करता है, यहाँ की एक-एक स्त्री मेरे स्वास्थ्य के लिए भगवान् सूर्यनारायण के सामने अपना आँचल फैलाती है । टुनाई, जैनरायन और उनके घरवाले ज़रूर ऐसा नही चाहते, मगर गाँव के आम लोग तो मुझे अपने जीवन का एक आवश्यक अश मानते है । मुझ पर सभी का समान अधिकार है ।

"पता लगायेगा तो गांव के बूढे-बूढ़ियां तुझे मेरे बारे मे बतायेंगे । बाढ के दिनों में, आग मे समूची बस्ती स्वाहा हो जाती है उन दिनो मे, प्लेग और महामारी के समय...मुसीबत का चाहे कैसा भी दौर गुज़रा हो, मैं लोगो के काम आया हूँ । इनकी वजह से हर किस्म की तकलीफ बरदाश्त की है मैने...

"जीवनाथ का चाचा पागल हो गया था। एक बार वह कही से आगी उडा लाया और रात के वक्त ऊपर चढकर मेरी एक मोटी डाल काट डाली। मैं दो दिनों तक बेहोश रहा। लोग बेहद ख़फ़ा हुए और पकड़कर 'हडी' मे डाल दिया उसे उन्होंने। तेरा बाप, जानू राउत, चिकनी मिट्टी के चूरन मे तेल-हल्दी मिलाकर मेरे उस बड़े घाव पर गीली मिट्टी का मोटा पट्टर डेढ महीने तक बांधता रहा, खोलता रहा। निरोग तने की रगों का ताजा रस कटाव को भरता आया, जिन्दा छालों की पपडी चारो ओर से बढती आयी। चार महीने बाद घाव की जगह बिलकुल भर गयी ।

"मोटी डालों से अब बरोज के लाल-लाल गुच्छे निकलने लगे थे। कुछ-एक बरोज नीचे लटक गये थे। बरोज के ताजा गुच्छों की नर्म मूँगे की दहकती लाली को मात करती थी। जो भी देखता, देखता ही रह जाता...

"बाढ़ यों तो कई बार मैंने देखी है, लेकिन एक बार ऐसी भयानक बाढ आयी थी कि यह समूचा इलाक़ा पन्द्रह दिनों तक डूबा रहा। उन दिनों जीवछ और कमला दो नहीं, एक ही नदी थी। अपने गाँव के क़रीब ही, पच्छिम की ओर जरा हटकर बहती थी। चालीस-पचास वर्ष हुए होंगे। मैं अपनी जवानी में मस्त रहता था। किसी की कोई परवाह नहीं थी। उन्हीं दिनों वह विकराल बाढ आयी। उस वर्ष बैशाख और जेठ के बीच हल्के-हल्के काफी वर्षा हुई थी। किसान खुश थे कि भदई की फसलें पहले तैयार हो जायेंगी और धान की अगहनी फसलों पर भी शुरू-शुरू की इन बारिशों का अच्छा असर पड़ेगा। लेकिन असाढ़ के बीचों-बीच जीवछ नदी में उस वर्ष अनोखी बाढ़ आ गयी।

"फसलें डूब गयीं, मैदान समुद्र बन गये। आस-पास के इलाक़ों में बहुत सारी बस्तियाँ कमर-भर पानी के अन्दर आ गयीं। तेरी यह रुपउली काफी ऊँचाई पर है। सो, यह गाँव टापू-जैसा लगता था। रजवाँध का पानी के अन्दर था और मेरे भी चारों ओर घुटना-घुटना-भर पानी लह-राने लगा।

"चमारों के घरों के अन्दर पानी घुस गया तो वे बुढ़िया-पोखर के मुहार पर आ गये।

"धमियापट्टी के नजदीक मुसहड़ों की एक बस्ती थी। बाढ़ का प्रकोप बढ़ा तो वह कमर-भर पानी के अन्दर आ गयी। औरत-मर्द सर-सामान और बाल-बच्चों को लिये-दिये भाग आये। मचान बाँधकर वे मेरी डालों पर रहने लगे। बड़ी मुसीबत थी बेचारों के लिए। रोज मजदूरी करें, रोज खायें...लेकिन उन दिनों तो सारे काम-काज बन्द पड़े थे। जमीन पानी के अन्दर थी तो वहाँ भला काम क्या होता? इस-

पुरा तक चले जाते, कहीं उतरने की जरूरत ही नहीं पड़ती बीच में। लेकिन इतने बड़े इलाके में सौ-पचास नावों से भला क्या होता है ? आम लोगों के लिए कहीं आना या जाना बिलकुल असम्भव था। निर्मली और भपटियाही वाली रेलवे लाइन हाल ही तैयार हुई थी, झंझारपुर से आगे मानसी तक वह डूब गयी थी।

"हाट और पेठ का काम रुक गया था। खरीद-खरीदकर चावल-दाल जुटानेवालों के लिए और बेच-बेचकर धन्धा कमानेवालों के लिए वे बहुत बुरे दिन थे।

"दूसरे के खेतों में मजदूरी करके जीविका चलानेवालों का तो और भी बुरा हाल था। यह बाढ़ उनके लिए तो भुखमरी का बिगुल बजाती आयी थी। रास्ते बन्द थे, भागना भी आसान नहीं था।

"मामूली किसान चावल तो क्या, जलावन के अभाव में खेसाड़ी और मसूर के दाने भिगो-भिगो करके चबाया करते थे।

"कुओं का पानी पीने लायक नहीं रह गया था। लोग पटापट बीमार पड़ते थे। दवा-दारू का कोई इन्तजाम नहीं...राजाबहादुर का एक वैद्य था, वह खुद ही बीमार होकर मरने-मरने पर था।

"मवेशियों के लिए चारा जुटाना मुश्किल था। चरागाह सब-के-सब पानी के अन्दर थे। तालाबों के भिंड, रजबाँध का कुछ हिस्सा, गाँव के बीचवाले खुले डीह...बड़े किसानों की ही गाय-भैंस और बैल उस पर चर पाते थे। बाकी ढोर-डंगर गलियों में आवारा फिरते थे, बाड़ियों के बाहर लतरी हुई तरोई-नेनुआ की बेलों पर मुँह मारा करते...हरि-याली के नाम पर बस उतनी भर गुंजाइश रह गयी थी उनके प्रलोभनों के लिए।

"बाढ़ के उन दिनों में, बेटा, चार आदमी साँप के काटने से मर गये थे अपने गाँव के। बाढ़ के कारण दूसरे गाँवों से ओझा-गुनी नहीं मँग-वाये जा सके, इस बात का लोगों को भारी अफसोस रहा।

"मरुई, मंडुआ, साँवाँ-काओन की खड़ी फसलें चौपट हो गयीं। धान

खोखला होने लगा, साल-भर बाद उसका भीतरी काठ बुरादा बनकर निकला...हँड़िये की शक्ल का यह खोडर तभी का है बबुआ रे !"

जैकिसुन बचपन से बरगद का खोडर देखता आया था। यह खोडर गाँव के बच्चों के लिए मिट्टी के खिलौने रखने का आला था। इसमें गिल्ली-डंडा, कौड़ियाँ, गुलेल की गोलियाँ, गोफन के ढेले, सतघरा और बाघ-गोटी की गोटियाँ वगैरह भी जब-तब पड़ी रहती थीं...इतने अच्छे पेड़ में यह खोडर कैसे बन गया, यह बात जैकिसुन को मालूम नहीं थी। उसने बाबा के चेहरे पर गहरी दृष्टि डाली।

बाबा थोड़ी देर चुप रहा, फिर बोला :

"तेरे दादे के जमाने में यहाँ से कोस-भर पूरब एक साहब आकर बस गया। क्या ही शानदार कोठी बनवायी थी उसने ! महाराज बहादुर से दो सौ एकड़ जमीन सौ साल के पट्टे पर नील की खेती के लिए उसको मिली थी। दुमका की तरफ़ से मुसहड़ों के पचास परिवार वह ले आया, कोठी के दक्खिन उनकी बस्ती आबाद हो गयी। उन्हीं लोगों से साहब नील की खेती कराता था। वे उसके गिरमिटिया मजदूर थे। वह उनका पूरा मालिक था—मेहनत का भी, जान का भी, माल का भी। उन दिनों गोरों का आम लोगों पर भारी आतंक था। शहर हो चाहे देहात, व्यापार-वाणिज्य का क्षेत्र हो चाहे किसानी-जमींदारी का, जज-कलक्टर होला हो या सेक्रेटेरियट—सभी जगह गोरी चमड़ीवालों की तूती बोलती थी। कानून और हुकूमत उनके बूटों की कीलों के नीचे थे। राजाओं के मुकुट और जमींदारों के तुर्रेदार पगड़ फिरंगियों के रास्ते की धूल के ज़र्रों को चूमने के लिए बेताब दीखते थे...

"पचास वर्ष तक यह कोठीवाल साहब पास-पड़ौस की जनता के स्वाभिमान को रौंदता रहा। अपने गिरमिटिया मजदूरों के साथ तो वह इस तरह पेश आता था, जिस तरह बाघ ख़रगोशों के साथ पेश आता है। बाकी लोगों की भी उसकी नजरों में कोई कीमत नहीं थी। धनी-मानी जो थे, वे किस्म-किस्म की सौग़ात भेजते रहते थे। साहबबहादुर

की ख़िदमत मे, कि उन पर उसकी शनि-दृष्टि न पड जाय ! परसादीपुर, धमियापट्टी और अपनी रुपउली के किसानो पर इस जौन साहब ने तिनकठिया लागू कर दिया था।

"तिनकठिया समझा बेटा ?"

"नही !"—जैकिसुन ने निषेध मे सिर हिला दिया।

बाबा ने कहा :

"एक बीघा में बीस कट्ठा ज़मीन होती है न ! तो प्रति बीघा तीन कट्ठा जमीन मे नील की खेती करने के लिए किसान मजबूर किये जाते थे। यह दबाव ज़मीदारों और सरकारी अफसरों द्वारा डलवाया जाता था। जो नहीं मानता, उसे कई तरह से परेशान करते थे। तुम्हारे दादा को जौन साहब के साले ने महज़ इसलिए पीट दिया एक बार कि वह सलाम करने से चूक गया था। बाज़ार से आ रहा था। एक हाथ में तेल का बर्तन था, दूसरे मे मछली लटक रही थी; बगल से लाठी दबा रखी थी और माथे पर अरहर की छोटी-सी गट्ठर। इधर से घोड़े पर सवार गोरा जा रहा था, जौन साहब का साला। दोनों एक-दूसरे को पहचानते थे। तेरा दादा आपा खोकर कुछ सोचता चला आ रहा था। उसे साहब को सलाम करने का ख़याल ही न रहा। अगले ही रोज़ साहब के सामने अधिकभाई की पीठ पर हंटरों की बौछार पड़ी...ता-ज़िन्दगी तेरे दादा की पीठ पर हण्टर के वे निशान बने रहे।"

यह घटना सुनकर जैकिसुन की मानो साँस टँग गयी। बेचारे को इसके बारे मे बिलकुल मालूम नहीं था। चम्पारन में नील के कारख़ानेदार कई थे, इतना तो वह जानता था, लेकिन अपने इस इलाके में भी कोई नील-दानव कभी रहा होगा—यह कल्पना जैकिसुन को नही थी। कोठी और बंगले का खँडहर तथा नील की टूटी-फूटी हौदी वह बचपन से देखता आया था।

बाबा ने कहा :

"पचास-पचपन वर्ष हुए, साहब अपनी ज़मीन बेचकर कलकत्ता चला

गया। नील की खेती पीछे फ़ायदे की नहीं रह गयी और पास-पड़ोस के दवे-पिसे किसानों का धीरज छूटने ही वाला था कि फिरंगिया जान लेकर भागा।

"इस गाँव में सबसे पहले जैनरायन के चाचा ने अंग्रेज़ी पढ़ी। घर से चावल और दाल दरभगा पहुँचाये जाते, खुद रसोई करके बेचारा खाता-पीता। उन दिनों पटना में युनिवर्सिटी नहीं थी। बिहार बंगाल के अन्दर ही था। सन् १६०५ ई० में कपिलेश्वर ने मैट्रिक पास की और दो साल बाद मुख़्तार बन गया वह। लहेरियासराय की अदालत मे मुकदमों की पैरवी करने लगा। चार-छ. वर्ष बाद तो जैनरायन का यह चाचा चमक उठा। लहेरियासराय के अच्छे मुख़्तारो मे उसकी शुमा होने लगी।

"दूसरा आदमी था टुनाइ का भाई जगमोहन, जिसने अंग्रेज़ी पढ़ी लिखी। इंट्रेंस की परीक्षा पास होते ही वह झारखण्ड की किसी स्टे मे छोटा तहसीलदार बहाल हो गया। उसकी भी किस्मत अच्छी तर चमकी।

"अब तो ख़ैर, रुपउली मे पचीसों आदमी अंग्रेज़ी पढ़-लिख गये हैं मिडिल तक तो तू भी पढा है न?"

सिर हिलाकर जैकिसुन ने स्वीकार किया।

बटेसरनाथ बोला:

"तेरी जात-बिरादरी के लोग भी अब पढने-लिखने लगे है। कुछ त अच्छे ओहदों पर भी पहुँच गये हैं। कई अब असेम्बली के मेम्बर भी ...पहले ज़माने मे ज्ञान-विज्ञान और पढाई-लिखाई बडी जात-वालो क बपौती थी। अब पाठशालाओं और स्कूलों के दरवाज़े सभी जातियो के बच्चो के लिए खुल गये हैं मगर ऊँची जातवालो का आपसी पक्षपात और 'शुभ-लाभ' के लिए उनकी आपाधापी जब तक मौजूद रहेंगे, त तक मानव-समाज की सामूहिक प्रगति नही होगी।"

जैकिसुन को सकरी का वह अछूत स्टेशन-मास्टर याद आया जिसने

बारे में थूक लगाकर टिकटें बाँटने की अफ़वाह उड़ायी थी लोगों ने...

क्षण-भर रुककर बाबा ने कहा :

"तेरे बाप की यह भारी साध थी कि बेटा कुछ पढ-लिख जाय। वह जिन्दा रहता तो जरूर तू मैट्रिक पास कर लेता। विद्या सिर्फ धन से नहीं होती। धन से ही अगर पढ़ाई होती तो राजाबहादुर का परपोता यह बाबू कृष्णदत्तसिंह सारी डिग्रियाँ हासिल कर चुका होता। कितने मास्टर रखे गये, कितनी रकम खरची गयी उसकी पढाई पर! मगर मैट्रिक से आगे वह नही बढ़ सका।

"जानू राउत पढ़-लिखा नहीं था लेकिन दुनिया उसने खूब देखी थी। पटना, जमशेदपुर, कलकत्ता, ढाका और जलपाइगुड़ी और कटिहार का पानी पिया था उसने। बाबूसाहब देवीदत्तसिंह ने चारों धाम की यात्रा की थी, उस यात्रा मे टहलुआ के तौर पर तेरा बाप ही साथ गया था। बाबूसाहब घूम-घामकर जब वापस आ गये तो जानू राउत को इनाम मे मन-भर चावल, धोती-चादर और एक गाय मिली थी।

"बाबूसाहब ने धूम-धाम से अपनी माँ का श्राद्ध किया था। श्राद्ध के बाद पच्चीस सौ पंडितों को निमन्त्रण गया था। पहली वर्षी के अवसर पर देश के कोने-कोने से विद्वान् लोग गौरीपुर-डेवढी मे जुटे थे। विदाई और आदर-सत्कार में एक लाख खर्च हुआ। तेरा पिता दो महीने राजासाहब के यहाँ प्रबन्ध-सम्बन्धी कामों मे लगा रहा। वह बड़ा चतुर था, साथ ही मेहनती और ईमानदार भी था। स्वाभिमान की भी काफी मात्रा थी उसके अन्दर। इसीसे राजाबहादुर समय-समय पर उसे दरबार मे बुलाते रहते। दस-पाँच रोज डेवढी में रहकर जानू काम कर देता और सलाम ठोककर वापस आ जाता। जी-हुजूरी में उसका दम घुटता। मुफ़्तखोरी उसके स्वभाव के अनुकूल नही थी। दूसरा होता तो दरबार मे बिलकुल चिपक जाता।"

जैकिसुन को अपना बाप अच्छी तरह याद था। आठ वर्ष पहले उसका देहान्त हुआ, तब जैकिसुन की आयु पन्द्रह साल की थी। पिता

के बारे मे उसने माँ से बहुतेरी बातें सुनी थी। लेकिन बाबा के मुँह से अपने बाप की प्रशंसा सुनकर जैकिसुन गद्‌गद हो उठा। '३०-'३२ के आन्दोलन में जानू राउत दो महीने जेल भी रह आया था। नमक-कानून तोड़ने के दिनों में बस्ती रुपउली के तीन आदमी गिरफ़्तार हुए थे···जानू राउत, दयानाथ राय और वीरभद्र झा···जैकिसुन उन दिनों ढाई-तीन साल का अबोध बालक रहा होगा। उसने सविनय कानून भग आन्दोलन के बारे मे काफी कुछ सुन रखा था। अब सही ब्यौरे वह बरगद बाबा से मालूम करना चाहता था। पुरानी बातें कुछ-न-कुछ सुन ही ली थी, आगे जैकिसुन को राष्ट्रीय मुक्ति-संग्राम की कहानी सुननी थी···

बाबा ने गम्भीरतापूर्वक कहा :

"जनुआ को साँप ने काट लिया, नही तो पच्चीस-तीस वर्ष वह और जिन्दा रहता। पडोस के घर की पुरानी भीत में चूहों ने बिल बना रखे थे। वही एक बिल मे कही से आकर काला नाग रहने लगा था।

"जानू राउत को बागवानी का बड़ा शौक था। घर के पिछवाड़े दस धूर (बिस्वाँसी) की वह बाडी तेरे बाप की मेहनत-मशक्कत से हमेशा हरी-भरी रहती थी उन दिनों। तेरी माँ को लगाव हरियाली से उतना कभी नही रहा। अब तो ख़ैर बुड्ढी हो गयी हैं, आठों पहर हो से हुक्के की नारियल सटाये रहती है। पहले भी काम के पीछे हाय-हाय करनेवाली औरतों मे तेरी माँ की शुमार रही हो, ऐसी बात नही थी। देखा है तूने कभी अपनी माँ को हड्डी-तोड मेहनत करते? सच-सच बतलाना! हाँ!"

जैकिसुन ने सिर हिलाकर 'ना' का संकेत किया।

बाबा बोला :

"तो, खेती-गिरस्ती से जो समय बच जाता उसका अधिक अंश जनुआ अपनी बगिया की साज-सँवार में लगाता। राजासाहब के बाग से कागजी नीबू का एक क़लम ले आया था। अब उसकी झाड हर साल

फल देती। एक पेड़ अमरूद का लगाया था। बीजू आम के दो पेड़ काफी बड़े हो आये थे। एक झाड़ गुलाबजामुन की भी लगायी थी। अलावा इसके, मौसमी साग-भाजियाँ वह खुद ही उगा लेता था। एक बार छिपाकर जानू ने गाँजे के दो पौधे उगाये थे..."

"गाँजे के पौधे !"...जैकिसुन चौंक उठा। पिछले वर्ष परसादीपुर का एक बामन इसीलिए फँस गया था कि उसके घर के पीछे गाँजे का का एक पौधा देखा गया था। चौकीदार ने थाने में जाकर रिपोर्ट कर दी। लाल मुरैठावाले दो जवान आये और असामी को गिरफ़्तार करके लहेरियासराय ले गये। लाख कोशिश-पैरवी पहुँचायी गयी लेकिन अदालत ने दो महीने की कड़ी क़ैद की सजा ठोक ही दी उस गरीब पर ! पकड़े जाने पर जैकिसुन के पिता को भी अदालत दंड दे सकती थी... जैकिसुन को ऐसा लगा कि इस वक्त भी उसकी बाड़ी में गाँजे के पौधे खड़े हैं और चौकीदार ने थाने में ख़बर कर दी है...वह देखो, लाल पगड़ीवाले उसे गिरफ़्तार करने आ रहे हैं।

बाबा ने मुस्कराकर कहा :

"तेरा बाप गाँजा ख़ूब पीता था। लेकिन जान-बूझकर उसने गाँजे के पौधे नहीं उगाये थे उस बार। भंग के पौधे समझकर पहले जिन्हें बढ़ने दिया, बाद को अपनी तेज़ और मस्त कर देने वाली बू की वजह से कुछ और ही साबित हुए। पत्तियाँ और टूसे उन पौधों के भंग की ही तरह के थे, हाँ, महक उनमें गाँजे की थी। मसल-मसलकर जनुआ ने उन्हें सूँघा, कई दफ़े सोचा...भाँग की ही कोई क़िस्म होगी। दयानाथ से उसकी खूब छनती थी। मालूम होने पर दयानाथ ने मना किया था कि मत रखो उन पौधों को, फेंक दो उखाड़कर, फसाद की जड़ हो सकते हैं साले ! क्या कमी है, बाजार से लाकर दम लगाया करो...

"परन्तु नहीं, वे पौधे ख़ूब बढ़े और चुपचाप बढ़े। उनकी मंजरियाँ सुखा-सुखाकर जानू ने रख ली और बरसात के दिनों में चिलम में सुलगा-सुलगाकर उनका मजा लूटा। बस, दुबारा नहीं गाँजे के पौधे

उसने कभी फिर पाले।

"उसी बागवानी ने बेचारे की जान ले ली।

"थोड़ी-सी जगह और काफी पेड़-पौधे...रेंगनेवाले कीड़ों के लिए तो वह कुञ्जवन ही था। बरसात का मौसम उस कुञ्जवन को बेहद घना कर देता था। रात-भर मेढक, न्योले और झींगुर वहाँ कोलाहल मचाये रहते।

"पड़ोस का घर एक कविजी महाराज का था। पत्नी, तीन बच्चे और पीतल-कांसे के चार-छः मामूली बर्तन, मिट्टी के दो-तीन मटके, फटे कम्बलों और पुरानी रजाइयों का छोटा-सा ढेर, टूटी तख़्तपोश—ऊपर से फूस के छप्परों वाला पुराना मकान। गिरस्ती का बुरा हाल था। बच्चे शायद ही तन्दुरुस्त रहते हों। आमदनी का कोई बँधा-बँधाया सिलसिला तो था नहीं। श्रीमन्तों, जमीदारों, राजाओं तथा नेताओं के मिज़ाज माकूल रहे तो चार पैसे मिल गये वरना टके की बादशाही में मस्त रहते थे कविजी—भंग का हरा रस ही उनके लिए सुधासिन्धु था। उनके पैरों में चक्कर था। बीस वर्ष की आयु के बाद शायद ही वह कभी पन्द्रह रोज लगातार रुपउली रहे हों। स्वर कविजी का इतना मीठा था कि रोता हुआ शिशु उनका कविता-पाठ सुनकर मुस्कराने लगता था, बिल्ली अपने शिकार को सामने से बेधड़क गुज़र जाने देती थी।

"न जाने, कहाँ से एक करैत (काला नाग) आकर कवि के घर की भीत के अन्दर रहने लगा था। पडोसियों ने कवि का ध्यान उस ओर दिलाया तो वह क्या बोले, बताऊँ?"

जैंकिसुन बाबा की ओर प्रश्नसूचक निगाहों से देखने लगा। अभी चार ही साल पहले तो कवि का स्वर्गवास हुआ है...

बाबा ने कहा :

"कविजी बोले...'स्वयं शेषनाग ने यह कृपा की है मुझ पर! मैं अपना खण्डकाव्य समूचा-का-समूचा भगवान् नागनाथ को सुनाऊँ। मत्कुणीक्रन्दन!! (खटमल-विलाप) कितनी मेहनत से मैंने यह रचना

तैयार की है।'

"उस शेषनाग ने जानू राउत पर बड़ी विकट कृपा की, कविजी पर चाहे जैसी कृपा की हो।"

जैकिसुन को अपने बाप की मौत की याद आ गयी। शाम का वक्त था। सूरन का चोखा बना था रसोई में। राउत ने जैकिसुन की माँ से पूछा...'नीबू का रस खूब डाला है कि नही?' जवाब में किसी ने कुछ नही कहा। रउताइन ने एक ही नीबू निचोडा था, वेचारी को खुद ही सन्देह था कि जिमींकन्द की कबकबी (खरास) इत्ती-सी खटाई से कटी होगी। राउत घर के पिछवाड़े गया, बगिया से नीबू लाने। लौटा तो 'सी-सी-मी-सी' 'सू-मू-सू-सू' करता हुआ आया और धम् से आँगन की लिपी-पुती भूमि पर बैठ गया। दो नीबू थे हाथ में, वे छूटकर अलग-अलग दिशा में लुढक गये...साँप ने डस लिया था दाहिने पैर की एड़ी के पास...जहर फैलता गया, वेहोशी बढती गयी। सुबह होते-होते नाड़ियों की गति बिलकुल रुक गयी। इसी बरगद के नजदीक रात भर झाड़-फूंक होती रही थी...

जैकिसुन को वे क्षण अच्छी तरह याद थे।

बाबा चुप था।

जैकिसुन अपने पिता की स्मृति मे डूब गया। बुलन्द चेहरा, चौडा कपार, घनी भौहें, सफ़ेद और चिकने दाँत, छँटी मूँछें...बदन में बाल कितने थे! और हँसता था किस तरह खिलखिलाकर। ज्यादा बोलता नही था!

जैकिसुन बाप के कन्धों पर बैठकर परसादीपुर और सतगामा जाया करता था दुर्गापूजा या कृष्णाष्टमी के मेले में थियेटर देखने...लेकिन तब वह सात-आठ वर्षों का रहा होगा। ननिहाल के रास्ते में भुतही बलान की धार पड़ती है, चौमासे में तो खैर नाव की शरण लेते है लेकिन कई बार जैकिसुन ने पिता का हाथ पकड़कर उस नदी को पार किया होगा...घुटनों-भर या कमर-भर पानी में से होकर।

९

जैकिसुन को थोड़ी देर तक सोचने का मौका देकर बरगद बाबा फिर बोले :

"जानू, दया और वीरभद्र, तीनो एक ही उम्र के थे। तीनो का बचपन मेरी छाँह मे बीता था।

"दयानाथ शत्रुमर्दन राय का पोता था। वीरभद्र था बलभद्र का पोता। दयानाथ को पढ़ने-लिखने का मौका नही मिला लेकिन वीरभद्र कलकत्ता युनिवर्सिटी का ग्रेजुएट था। घरवालो की राय में उसे 'बंगाल की हवा' लग गयी थी।

"बगाल की हवा का मतलब समझा ?"

"नही !"

जैकिसुन की समझ में सचमुच नही आया कि बंगाल की हवा से बाबा का यहाँ क्या अभिप्राय है।

बाबा ने कहा :

"बगाल के नौजवान महात्मा गांधी की असहयोग और सत्य-अहिंसा की बातो मे आस्था नहीं रखते थे। दुश्मनो को पछाड़ने के जितने भी तरीके हो सकते है, वे उन्हे आजमाने के पक्ष मे थे। ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के जमाने से ही गोरी हुकूमत के खिलाफ़ बंगालियों का सशस्त्र प्रतिरोध शुरू हो गया था। कर्जन जब बड़ा लाट होकर आया तो उसने बगाल को दो हिस्सों में बाँटना चाहा। वहाँ की शिक्षित और अशिक्षित समूची जनता ने अंग्रेज शासकों की उस कुटिल नीति का विरोध किया। नौजवानों ने कई गोरे आफिसरों को मार डाला और क्रान्ति की एक नयी परम्परा हिन्दुस्तान मे शुरू हुई। साम्राज्यशाही बौखला उठी तो दमन का चक्र और जोरों से चलने लगा। अंग्रेज कूटनीतिज्ञ गोखले और गांधी जैसे नेताओं की उतनी परवाह नही करते थे, क्रान्तिकारियो के गुप्त

संगठनों की उभार तो ब्रिटिश प्रभुओं की नींद हराम किये रहती थी…

"मैट्रिक करके वीरभद्र कलकत्ता चला गया था। ट्यूशन करके अपना सारा खर्च निकालता था। बंगाली विद्यार्थियों की संगति में पड़कर उसके भी विचार बदलने लगे थे।

"घरवालों की आशा के मुताबिक उसे वकील या डिप्टी मजिस्ट्रेट या प्रोफ़ेसर होना चाहिए था। लेकिन बारह-चौदह वर्ष कलकत्ता रहकर भी वीरभद्र वीरभद्र ही बना रहा। उसकी चर्चा चलती तो लोग कह उठते—बंगाल की हवा लग गयी लड़के को…

"एक बार तीन साल की और दूसरी बार दो साल की कैद काट चुका था वीरभद्र। तीसरी दफ़ा वह यहीं अपनी बस्ती रूपउली में ही सोलह महीने नजरबन्द रहा; हफ़्ते में एक बार थाना पहुँचकर दरोगा से मिलना पड़ता था और गाँव का चौकीदार हर रात एक-आध बार नाम लेकर वीरभद्र को पुकार लेता।

"ससुरालवाले काफी मातबर थे। औरत अपने माँ-बाप की इकलौती थी। वीरभद्र का अपना घर भी 'सुखी खानदान' कहलाता था। दो बड़े भाई थे, एक बेतिया-राज की किसी सर्किल में मैनेजर था और दूसरा घर-गिरस्ती सँभाले हुए था। परिवार बड़ा था सही, मगर अस्त-व्यस्त नहीं था। जमीन काफी थी। पोखरा था, बाग़-बगीचे थे। काम करने के लिए जन-बनिहारों की कमी नहीं थी…वीरभद्र पर दुनियादारी का रत्ती-भर भार नहीं था। बंगला-गीतांजलि, गीता का तिलक-भाष्य और अँग्रेजी दैनिक अमृतबाजार पत्रिका—कुछ समय तो उसका इनमें कट जाता और कुछ समय गँवई बातचीत व बच्चों के साथ खेलों में।

"दयानाथ को अपने जीवन में पढ़ने-लिखने का अवसर नहीं मिला था सही, लेकिन महात्मा गांधी के लिए उसके अन्दर अपार श्रद्धा और गम्भीर भक्ति थी। यह श्रद्धा-भक्ति अंकुरित तो तभी हो गयी थी जबकि चम्पारन की भूमि पर गांधीजी के चरण पड़े थे। नील के कारख़ानेदार साहबों की तरफ़दारी में पहले तो सरकार तन गयी परन्तु पीछे उसे

झुकना पड़ा और इस प्रकार चम्पारन की जनता को नील-दानवों से छुट-कारा मिला। चार वर्ष वाद असहयोग-आन्दोलन छिड़ा तो गांधी की कीर्ति मे मानो पख लग गये; महात्माजी के नाम पर चमत्कारपूर्ण सैकड़ो किंवदन्तियाँ लोगों के होठों पर थिरकती फिरी; बाँसुरी के छेदो से छन-छनकर गांधीवाले बीसियों गीत गंडक, बागमती, कमला और कोसी की लहरो पर मचलते फिरे।

"१६२३ में नागपुर में झंडा-सत्याग्रह छिड़ा तो वे वैशाख के आखिरी दिन थे। रबी की फ़सलें न केवल पक चुकी थीं बल्कि खेतों और खलि-हानों से उठकर घर के अन्दर पहुँच गयी थी। अगहनी फसलें भी उस साल अच्छी हुई थीं। दयानाथ ने हिसाब लगाकर देखा कि अठारह महीने की खुराक के लायक अनाज मौजूद है। गन्ने की पिछली उपज से गुड़ तैयार किया था जिसकी बिक्री से पचास रुपये आ गये थे।

"उपज अच्छी हुई हो और घर-गिरिस्ती का काम ठिकाने से चल रहा हो, तो किसान अपने को क्या समझता है बेटा ?"

जैकिसुन ने बाबा की तरफ़ देखा।

बाबा ने आँखें दुहरी करके उसे बार-बार देखा।

जैकिसुन की पलकें नीचे झुक गयी...

बाबा ने जैकिसुन की ठुड्डी छूकर उसे अपनी ओर मुखातिब कर लिया और कहा :

"उस हालत मे किसान अपने को बादशाह समझता है, बल्कि उस स्थिति मे वह अपने आगे किसी को कुछ नही समझता, है न ?"

जैकिसुन ने माथा हिलाकर स्वीकार किया।

बाबा बोले :

"नागपुर के झंडा-सत्याग्रह की ख़बर सूखे सरकंडों के जंगल में आग की तरह जोरों से फैल रही थी। गांधीजी जेल के अन्दर थे। लोगों में बेहद उत्तेजना थी। बीरभद्र का भाई काशी से 'आज' मँगवाता था। दुपहरिया में और रात के पहले पहर के वक्त उसके दालान में छोटे-मँझोले

किसानों का अड्डा जमता। यह उन्हीं तर्कपंचानन महाशय की चौपाल थी जिनके बारे में पहले बता चुका हूँ। पहले इस दालान पर भागवत और ब्रह्मवैवर्त पुराण, धृत्तिवास की रामायण और काशीरामदास का महाभारत, पीछे सुखसागर-प्रेमसागर और रामचरितमानस का पारायण होता आया था। अब बनारसी दैनिक 'आज' का नम्बर था।

"असहयोग और सत्याग्रह की हलचलों को यह अखबार उछलती हुई भाषा में छापता था। किसान बड़े गौर से उन्हें सुना करते।

"दो वर्ष पहले चौरीचौरा-काण्ड के बाद गांधीजी ने आन्दोलन पर रोक लगा दी थी, पस्तहिम्मती के कारण लोगों का दिल पथरा गया था। झंडा-सत्याग्रह में शामिल होने के लिए कांग्रेस की अपील सुनकर अब उनके अन्दर फिर सुरफुराहट पैदा हुई। दयानाथ ने किसी से कुछ बतलाया नहीं, अगले ही रोज़ पटना के लिए वह चल पड़ा। स्वयं-सेवकों के जत्थे में नागपुर पहुँचा। ख़त आया तो गाँववालों को उसका ठौर-ठिकाना मालूम हुआ।

"कुल मिलाकर दयानाथ बाईस रोज़ नागपुर-जेल में रहा। छूटा तो सीधे रुपउली आया।

"पूछने पर लोगों से यही बताया कि तीर्थ-यात्रा से लौटा है।

"और, सचमुच नागपुर का वह जाना-आना उसके लिए तीर्थ-यात्रा ही था। उन दो-ढाई महीनों में दया को जितना कुछ तजरबा हुआ, उतना तीस वर्षों की आयु में उससे पहले कहाँ हुआ था।

"तेरा बाप उन दिनों ढाके में था और वीरभद्र था कलकत्ते में। मैंने दयानाथ से झंडा-सत्याग्रह की सारी कहानी सुनी तो उस व्यक्ति के सौभाग्य के प्रति एक पवित्र ईर्ष्या का अनुभव हुआ।

"बेटा, मैं अब काफ़ी सयाना हो गया था। असहयोगियों और सत्याग्रहियों की शान्तिमय निहत्थी भीड़ पर लाठी-चार्ज की ख़बरें सुनता तो पत्ते खड़े हो जाते; टूसों से गरम-गरम भाप निकलने लगती और इन टहनियों में कुछ तनाव-सा महसूस करता।

"सतगामा के यह लीडर, जो आजकल पार्लियामेंट के मेम्बर हैं, क्या नाम है उनका ?"

"कुलानन्द दास"—मन-ही-मन जैकिसुन बोला।

"हाँ हाँ, कुलानन्द दास ! याद आया नाम रे !

"यह बाबू कुलानन्द दास सन् बाईस में वकालत छोड़कर गाधी महात्मा के दल में शामिल हो गये थे, पता है तुझे ?"

जैकिसुन ने 'ना' के तौर पर माथा हिला दिया।

बाबा ने कहा :

"ऐसी बात नहीं कि वकालत उनकी खूब चलती रही हो, तो भी घरवालों ने उन्हें इसकी इजाज़त नहीं दी थी कि जेल चले जायें।

"उन दिनों असहयोग की धूम मची हुई थी···कोई अपनी नौकरी से इस्तीफा दाखिल कर रहा था; कोई कॉलिज की पढ़ाई छोड़ रहा था; कोई प्रोफ़ेसरी और मास्टरी पर लात मार रहा था। असहयोग की बातों को लेकर पढ़े-लिखे लोगों में खूब चहल-पहल थी।

"अपनी इन देहातों का साधारण ढाँचा पिछले पच्चीस-तीस वर्षों में थोड़ा-कुछ बदला अवश्य था, परन्तु परिवर्तन की यह कोई उत्साह-वर्धक रफ्तार थोड़े थी।

"रेलवे की छोटी लाइनें उत्तर की ओर नेपाल की तराई को छू चुकी थीं। उन दिनों इस रेलवे का क्या नाम था, मालूम है न ?"

जैकिसुन ने संकेत से स्वीकार किया।

बाबा ने कहा :

"हाँ, बी० एन० डब्लू० आर० (बंगाल-नॉर्थ-वेस्टर्न रेलवे) ! यही नाम था। सकरी से उत्तर की ओर मधुबनी होकर एक नयी ब्राच लाइन निकाली थी जिसका आख़िरी स्टेशन जयनगर था। सकरी से पूरबवाली लाइन भपटियाही, सुपौल, सहसी तथा मानसी होती हुई महादेवपुर घाट तक पहले ही खुल चुकी थी। इस ओर महादेवपुर घाट और उस ओर बरारी घाट, भागलपुर...स्टीमर-सर्विस मुसाफ़िरों को गंगा पार

कराने लगी थी। समस्तीपुर रेलों का भारी जंक्शन हो गया। मिमरिया घाट और मुकामा घाट के दरम्यान जहाज चलने लगे थे। दरभंगा से उत्तर रेल की एक लाइन फैली जो सीतामढ़ी, रक्सौल, नरकटियागंज, छितौनी घाट तथा मिसवाबा बाजार होती हुई गोरखपुर को छू रही थी। इधर के सभी प्रमुख नगर रेलवे द्वारा एक-दूसरे से जुड़ चुके थे। रैयाम, लोहट, रीगा, मुक्तापुर आदि कई स्थानों में अंग्रेज सौदागरों ने चीनी और जूट की मिलें खड़ी कर ली थीं। विलायत की बनी चीजें अब इन इलाक़ों में धड़ल्ले से मिलने लगी थीं। देहाती कारीगरों पर इसका बड़ा ही बुरा असर पड़ा।

"अपनी इस बस्ती रुपउली पर भी इस नयी व्यवस्था का वैसा ही बुरा प्रभाव पड़ा···"

जैकिसुन ने बाबा की ओर देखा। निगाहें प्रश्न उगल रही थीं।

बाबा बटेसरनाथ बोले :

"चमार जूते बनाना भूल गये। मोमिनों के पाँच करघे थे सो अब एक ही रह गया। चीनी की आमद ने गुड़ के व्यापार को चौपट कर दिया। बटन, सुई, आईना, कंघी, उस्तरा और कैंची···कपड़े, खेती के औजार···बाहरी माल आ-आकर स्थानीय उद्योग-धन्धों का गला दबाने लगे। तेजी और मन्दी के दो पाटों में पड़कर अनाज का एक-एक दाना कराह उठा बेटा! अनाज का एक-एक दाना ही नहीं, गाँव का एक-एक आदमी कराह उठा बेटा! बर्तन में पानी तो पहले ही जितना आता था, लेकिन छेद उसमें एक के बदले अनेक हो गये थे!!

"इस अपूर्व ध्वंस-लीला के साथ ही रोजगार की कुछ नयी सूरतें भी निकल आयी थीं। नये ढंग से तालीम पाये हुए आदमियों का एक नौकरीपेशा बाबू-तबका और आपसी भेद-भाव भूलकर अनोखी मशीनों के जरिये नये तौर-औ-तरीक़ों से काम करनेवाले मजदूरों का एक सर्वहारा-वर्ग अस्तित्व में आ चुके थे।"

जैकिसुन को बाबा का यह प्रवचन बुरा नहीं लग रहा था। अफ़सोस

उसे यही हो रहा था कि जीवनाथ और सरजुग भी क्यो नही ये बातें सुन पाये !

रात तीन पहर तो नहीं, लेकिन ढाई पहर जरूर बीत चुकी थी। मनीगाछी की तरफ से आनेवाली दो बजे की पैसेंजर ट्रेन धरती को घमधमाती हुई अभी-अभी निकली होगी...

घण्टे-भर बाद चरवाहे भैंसों को खोल देंगे तो उनके खुरों की आवाजें और नथनो की फरफराहट सुनकर बुड्ढों की नींद अवश्य उचट जायगी।

थोड़ा रुककर बाबा ने जैकिसुन से पूछा :

"क्यो, प्यास-व्यास तो नहीं लगी है ?"

स्वीकार की मुद्रा मे जैकिसुन का माथा हिला। फिर वह अलग जाकर पेशाब कर आया।

तब तक बाबा दोने मे पानी ला चुका था। जैकिसुन ने एक ही साँस मे पी लिया और दोने को फेंक दिया।

दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए बाबा ने कहा :

"अपने देश मे आजादी की लड़ाई कई मंजिलों से गुजरती हुई आज की स्थिति तक पहुँची है। राजनीतिक उथल-पुथल का देशव्यापी विराट् प्रदर्शन १९२१ के अन्त में पहली बार हुआ। 'प्रिन्स ऑफ वेल्स' को बड़े-बड़े शहरों मे घुमाया गया था। शाही स्वागत तो उसका हुआ नही, हाँ, विरोध-प्रदर्शन अवश्य हुए। ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति भारतीयों के अन्दर जो विक्षोभ घुट रहा था उसका इजहार इतने जोरों में हुआ कि विलायती तानाशाह बुरी तरह घबरा उठे और दमन की चक्की दस गुनी रफ्तार मे चला दी। गाधीजी अपने लेखों, वक्तव्यों और भाषणों मे उस व्यापक जन-क्षोभ को ठण्डा करने की कोशिश करते रहे...अन्त में ऊबकर उन्होंने कहा कि उन्हें 'स्वराज्य' शब्द से भी चिढ़ हो गयी है।"

आश्चर्य के मारे जैकिसुन की आँखें फैल गयी—" 'स्वराज्य' शब्द

से भी चिढ़ हो गयी गांधीजी को !"

बाबा ने कहा :

"हाँ बेटा, गांधीजी अपनी अहिंसा के आगे और सत्य व आत्म-शुद्धि के आगे बाक़ी बातों की परवाह शायद ही करते थे। जल्द-से-जल्द स्वराज्य हासिल करने के लिए १९२० के अन्त मे कांग्रेस ने असहयोग और बहिष्कार का नया लडाकू प्रोगाम अपनाया था। बड़े नेताओं के इस निर्णय से साधारण जनता में उत्साह की अनोखी लहर फैल गयी। राष्ट्रीय मुक्ति-संग्राम की धारा लोक-चेतना के समतल मैदान मे उतर आयी। गांधीजी ने भविष्यवाणी कर दी थी कि वर्ष भर मे स्वराज्य मिल जायगा···मगर इस विराट् जन-आन्दोलन की रूप-रेखा क्या होगी, इस बारे में स्वयं गांधीजी भी स्पष्ट नही थे और स्पष्ट थे भी तो दूसरों को उस विषय में कुछ बताना आवश्यक नही समझते थे। किसी की समझ में नही आ रहा था कि महात्मा क्या करनेवाले हैं; प्रबल पराक्रमी अंग्रेज़-सरकार को वह किन दाँव-पेचों से पछाड़ेंगे, यह किसी को साफ़-साफ़ सूझ नहीं रहा था।

"असहयोग का वह ज़माना अद्भुत था। देश का हर हिस्सा नयी चेतना से स्पन्दित होकर अँगड़ाइयाँ ले रहा था। आसाम-बंगाल रेलवे में हड़ताल हुई। मिदनापुर के किसानो ने लगानबन्दी का आन्दोलन छेड़ दिया। दक्षिण मलाबार के मोपलों ने बगावत कर दी। पजाब में सरकार के पिट्ठू महन्तों के ख़िलाफ अकाली सिखो की घृणा भडक उठी।

"गांधीजी को छोड़कर तमाम प्रमुख नेता गिरफ्तार कर लिये गये— मोतीलाल नेहरू, देशबन्धु चितरंजनदास, लाला लाजपतराय वगैरह। उन्हें जेलों मे बन्द कर दिया गया। स्वराजी क़ैदियों की तादाद ३०,००० तक पहुँच गयी।

"अब एकमात्र महात्माजी कांग्रेस के डिक्टेटर थे। आन्दोलन पूरे उठान पर था। कांग्रेस ने सारे अधिकार उन्हें सौंप दिये थे कि वह संघर्ष को सही दिशा दे और देश को विजय की आख़िरी मंजिल तक पहुँचायें।

अब अवसर आ गया था कि जन-विरोधी सरकार से ताकत आजमा ली जाय। एक-एक भारतीय की नजर गांधीजी की तरफ़ थी कि देखें अब वह क्या करते हैं।

"आशा और उत्साह के उन तूफ़ानी दिनों में गांधीजी स्वयं ही बेहद परेशान हो उठे। उनका असहयोग-आन्दोलन उनके सुझाये हुए अहिंसक मार्गों पर ठीक-ठीक चल नहीं पा रहा था। भूल-चूक के छिट-पुट समाचार आते ही रहते थे। अहिंसा की जिस दिव्य और भव्य प्रतिमा को वह कल्पना के अपने सहस्रदल कमल पर बैठाये हुए थे, उसके चेहरे पर अनचाहे और ढीठ जन-समूहों के कड़े-नुकीले नाखूनों की गहरी खरोंच बार-बार उभर आती थी। गांधीजी को ऐसा अनुभव होता था कि उनकी इन कोशिशों से एक महाभयानक दैत्य के पैरों की बेड़ियाँ खुल गयी हैं और वह अहिंसा की देवी का गला घोंटने ही वाला है। बात-बात में महात्माजी परेशानी और हिचक प्रकट करने लगे थे; तभी तो उन्होंने कहा था कि उन्हें स्वराज्य शब्द से भी चिढ़ गयी है।

"उन्हीं दिनों गोरखपुर जिले में 'चौरीचौरा' काण्ड हो गया, जिसमें जनता की उत्तेजित भीड़ ने थाना जला दिया था।

"गांधीजी बड़े दुखी हुए और उन्होंने सत्याग्रह तथा असहयोग की उस व्यापक लड़ाई को बिलकुल स्थगित कर दिया। स्वयंसेवकों के जुलूस, सरकार-विरोधी सभाएँ, दमन-क़ानूनों के खिलाफ़ संघर्ष···सब बन्द !

"आन्दोलन एकदम ठप हो गया।

"जन-संग्राम के प्रति महात्माजी का यह खिलवाड़ देश के लिए बहुत बड़ी दुर्घटना थी। गांधीजी के खास साथी जेल के अन्दर बन्द थे। यह समाचार पाकर क्रोध और दुख के मारे वे पागल हो उठे।

"कोई भी समूचा आन्दोलन जब एक व्यक्ति के मातहत होता है तो इसी तरह के नतीजे बाहर आते हैं।

"चरखा, व्रत-उपवास, आत्म-शुद्धि, ग्रामोद्योग···गीता, कुरान और

बाइबल...सत्याग्रह, असहयोग, बहिष्कार...जेल जाना, बाहर आना, आश्रम-जीवन, सत्य और अहिंसा के नये-नये प्रयोग, सेठों और जमींदारों का हृदय-परिवर्तन...साम्राज्यशाही, छोटे-बड़े लाटों की नेकनीयती के प्रति आस्था, किसानों और मजदूरों के वर्ग-संगठनों की ओर सन्देह की दृष्टि...इस प्रकार के बहुतेरे चमत्कारों का केन्द्र था महात्माजी का जीवन। उनकी सबसे बड़ी खूबी क्या थी, पता है?"

निषेध की मुद्रा में जैकिसुन का माथा हिला।

बाबा बोले :

"आज़ादी के लिए जो समझदारी पहले थोड़े-से पढ़े-लिखे लोगों तक सीमित थी, उसे गांधीजी आम पब्लिक तक ले आये। यही उनकी सबसे बड़ी खूबी मैं मानता हूँ।

"दस वर्ष बाद '३० में फिर कांग्रेस ने मोर्चाबन्दी की। जन-विरोधी कानूनों से ऊबे हुए लाख-लाख लोग फिर मैदान में निकल आये। फिर गांधीजी ने कहा कि अहिंसा में बट्टा न लगे तो मुझे हार भी कबूल होगी।

"इस बार महात्माजी अपने आश्रमवासी चेलों के साथ नमक-कानून तोड़ने निकले।

"लेकिन कानून तोड़ने का यह आन्दोलन थोड़े ही अरसे में जोर पकड़ गया।

"गैर-कानूनी नमक बनाना, शराब-अफीम और विलायती कपड़ों की दुकानों पर पिकेटिंग करना, तकली और चरखे पर सूत कातना, ढेर-का-ढेर सूत कतवाना, छुआछूत ख़तम करना, विदेशी कपड़े जलाना, स्कूल-कॉलिजों का बहिष्कार, सरकारी नौकरियों से इस्तीफा...यही प्रोग्राम था। गांधीजी ने कहा था—"ऐसा करने पर हम देखेंगे कि स्वराज्य हमारे दरवाज़े खड़ा है।"

"पहले तो सरकार ने भी खेल किया और गांधीजी को गिरफ्तार नहीं किया। पुराने तजरबों के आधार पर नौकरशाही समझ बैठी थी

कि महात्मा की गिरफ़्तारी से लोगों में नाहक़ उत्तेजना फैलती है। लेकिन इस दफ़ा जनता ने नेता की धर-पकड़ से पहले ही जौहर दिखाने शुरू किये। अहिंसा के पैग़म्बर ने जन-आन्दोलन को जो सीमाएँ बाँध रखी थीं, उनका टूटना आरम्भ हो गया। बड़े-बड़े प्रदर्शन होने लगे। चटगाँव के शस्त्रागार पर छापा मारा गया। उत्तरप्रदेश में ज़ोरों से लगानबन्दी शुरू हुई। पेशावर में गढ़वाली सिपाहियों ने निहत्थी भीड़ों पर गोली चलाने से इन्कार करके कानून को अपने हाथों में ले लिया।

"और, गांधीजी की गिरफ़्तारी के बाद तो हड़तालों की मानो बाढ़ आ गयी। शोलापुर के एक लाख चालीस हज़ार बाशिन्दों ने शहर पर कब्ज़ा कर लिया। उनमें पचास हज़ार सूती मज़दूर थे। लोगों पर कांग्रेसी नेताओं का नियन्त्रण टिक न सका, जनता अपनी हकूमत कायम करना चाहती थी।

"साम्राज्यशाही दमन की कोई सीमा नहीं थी। ऑर्डिनेन्स-पर-ऑर्डिनेन्स निकल रहा था। कांग्रेस और उसके सम्बन्धित संगठन ग़ैर-कानूनी करार दिये गये। दस महीने के अन्दर नब्बे हज़ार मरदों औरतों और बच्चों को क़ैद की सज़ा दी गयी। जेलें ठसाठस भर चुकी थीं। बेंतों, हण्टरों, लाठियों और गोलियों का सिलसिला चला, लेकिन जनता की हिम्मत नहीं टूटी। ख़बरों पर सख्त सेन्सर थी, अखबार ज़्यादातर बन्द कर दिये गये थे। जिनमें सरकार ने ताला जड़ दिया था, वैसे छापाख़ानों की भी कमी नहीं थी। आन्दोलन का विस्तार फिर भी कम नहीं हुआ।

"अंग्रेज़ी हकूमत बेहद घबरायी। लंकाशायर की कपड़ा-मिलों के विदेशी धन्नासेठों की नींद हराम हो गयी। इस देश में कारोबार करने-वाले गोरे सौदागर तो करारी दहशत खा गये थे। उन्होंने भारतीय जनता को अनुकूल रखने के लिए अपनी गोरी सरकार से अनुरोध करना आरम्भ किया कि हिन्द को औपनिवेशिक दरजा तो अवश्य दे दिया जाय।

"आन्दोलन विशुद्ध अहिंसात्मक ढंगों पर नहीं चल रहा था। इससे गांधीजी को जेल के अन्दर भी बड़ा दुःख था। वह शान्ति और सहयोग के अवसरों की प्रतीक्षा उत्कण्ठापूर्वक कर रहे थे।

"सावन का महीना था। धान की रोपाई खतम हो चुकी थी। मड़ुआ और मकई की फसलें तैयार थीं। सामने खेतों की हरियाली, ऊपर आकाश और नीचे धरती। किसान मस्त थे।

"नमक-कानून तोड़ने का यज्ञ जिले में कहीं-न-कहीं आये-दिन होता ही रहता था। दयानाथ ने सावन की पूर्णिमा के दिन यहीं मेरी छाँह में नमक बनाना शुरू किया। दारोगा को खबर दी जा चुकी थी। पाँच-सात चौकीदार, दो दफादार, पाँच कान्स्टेबल और दारोगा मौके पर हाजिर थे...

"बूढ़े, बच्चे और जवान सैकड़ों की तादाद में तमाशा देखने आये थे। काफ़ी दूर पर उधर अलग खड़ी औरतें भी 'गांधी बाबा' का यह यज्ञ देखने आयी थीं।

"गड्ढा खोदकर तीन चूल्हे बना लिये गये थे। उनमें आँच जलायी गयी। तीन नयी हँडियों में नोनी मिट्टी और पानी घोलकर उन्हें चूल्हों पर चढ़ा दिया दयानाथ ने। तेरा बाप आँच ठीक रखने की ड्यूटी पर था। दयानाथ के एक हाथ में तिरंगी झण्डी थी, दूसरे से वह लोगों को समझा रहा था कि वे शान्तिपूर्वक तमाशा देखें और हल्ला-गुल्ला न करें।

"हँडियों का पानी थोड़ी देर में खौलने लगा।

"काफी खौला तो हँडियाँ जालू राउत ने चूल्हों पर से उतार लीं।"

"तब तक दया उधर पन्द्रह-बीस स्कूली और गैर-स्कूली लड़कों को बटोरकर गा रहा था,

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा !
झंडा ऊँचा रहे हमारा !!...

"ध्वजा की जगह एक बेढंगी लट्ठ खड़ी थी जिसके सिरे पर मामूली-

सा मझोला तिरंगा फहरा रहा था। गीत की एक कड़ी दयानाथ गाता, बाकी लड़के उस पद को जोर से दुहराते। गाँववाले गहरी दिलचस्पी से देख-सुन रहे थे।

"मेरे लिए भी वह सब एक नया अनुभव था बेटा! दम साधकर मैं देख-सुन रहा था।

"कुछ देर बाद हँडियो का पानी नीचे गिरा दिया दया ने। तले में जमी नमकीन मिट्टी को दोनों मे निकाल लिया गया।

"फिर नकली नमक का वह दोना उठाकर दया ने लोगो से कहा: 'भाइयो, इसे आप मामूली मिट्टी मत समझें। यह तो स्वाधीनता दिलाने वाली दवा है। इसके जर्रे-जर्रे से अंग्रेज-सरकार खौफ़ खाती है। इस नमक की एक चुटकी एक ओर और जालिमो का सौ मन बारूद दूसरी ओर—वह इसकी बराबरी नही कर सकता। यह नमक नही है, महात्मा जी की प्रसादी है...लीजिये, दो आने मे एक दोना मिलेगा...यह खाने का नमक नही है, तावीज मे डालने का नमक है!"

"इतना कहना था कि दयानाथ को दारोगा ने रुकने का इशारा किया।

"दो कांस्टेबलों के साथ दारोगा आगे बढ आया और दयानाथ के हाथों मे एक कांस्टेबल ने हथकड़ी डाल दी।

"दयानाथ ने नारा लगाया:

'महात्मा गांधी की जय!'

'महात्मा गाँधी की जय!!'—लोगों ने दुहराया।

"दयानाथ अब की उत्साहित होकर और जोर से चिल्लाया:

'भारत माता की जय!'

'भारत माता की जय!!'—लोगों ने दुहराया...आवाज कई गुनी ऊँची थी इस बार।

"तीसरी बार दया हथकड़ी मे फँसी कलाइयों-समेत दोनों बाँहें ऊपर उठाकर समूची ताक्त से चिल्लाया:

'अंग्रेजी राज...'

'...नाश हो !'

"इस दफ़ा तो लोगों ने नारे में इतनी ताकत लगा दी कि आकाश गनगना उठा। कौंस्टेबल और दारोगा का कलेजा काँप गया।

"दारोगा ने अब दोनों हाथ जोड़कर लोगों से कहा—'अपने पेट के कारण मैं मजबूर हूँ। अपना देश किसे प्यारा नहीं होता ? सरकारी ऑर्डर के मुताबिक ही मैंने इन्हें अरेस्ट किया है इसमें मेरा अपना कोई कसूर नहीं।'

"दारोगा की इस दीनता पर बूढ़े और अधेड़ चकराये, जवान मुस्कराये और जिनकी मसें भीग रही थीं वे खिलखिला पड़े।

"इस दारोगा का नाम था भीम झा। तगड़ी डीलडौल और रोबदार चेहरा। मूँछें उसकी ऐसी थीं कि देखनेवालों के सिर में दर्द उठा करता, जब कभी वे याद आ जातीं। वह घूस तो नहीं लेता था मगर जोर-जबर्दस्ती काफ़ी रकम ऐंठ लेता था रियाया से। आपसी बातचीत में लोग उसे 'डकैतों का सरदार' कहा करते। जरा-जरा-सी गुनाह के नाम पर मुजरिम की बड़ी पिटाई करता था। बड़ी-बड़ी हैसियतवाले किसान और काश्तकार खुश रखने के लिए उसके यहाँ सौगात भेजते रहते थे —दही, मछली, आम और कटहल, मालभोग और चम्पा केलों की घौद, तुलसीफूल-लछमनभोग-जैसे बढ़िया चावल वगैरह...मामले की तहक़ीक़ात में भीम झा जब-तब अपने इलाके की बस्तियों का चक्कर लगाया करता। जीन-कसे घोड़े पर टोपधारी सवार को देख कर लोग चौकन्ने हो जाते कि दारोगा आ रहा है; कुछ चौकीदार और दो-एक कौंस्टेबल पहले आ चुके होते। चोरी के मामले में जिन पर शुबहा रहता, उन असामियों की भीम झा कोड़ों से बुरी तरह खबर लेता, फिर कोई और बात करता...जमीन के झगड़ों में दोनों पक्ष वालों को थाना बुलवाता, डरा-धमकाकर कुछ रकम वसूल कर लेता और कच्चा समझौता उन पर थोप देता। दहशत, अकड़, मक्कारी, जोर-जबर्दस्ती

और प्रपंच का अवतार समझा जाता भीम झा दारोगा। हमेशा कड़ककर बोलता, तनी भौंहें और कड़ी मूँछें उसकी आँखों में आतंक का लाल सुरमा भरती होती।

"और वही भीम झा आज मजबूरी के दाँत दिखा रहा था! अपने बेकसूर होने की कैफ़ियत दे रहा था!

"जेनरायन का बुड्ढा बाप रामनरायन फुसफुसाया, 'यह महतमाजी का जादू है।'

'हाँ, सरकार के इस पट्टा-हाथी पर अबकी देवता का आँकुस पड़ा है चाचा!' किसी ने बूढ़े का समर्थन किया।

"तेरा बाप जानू राउत इतने में दारोगा के सामने आया और छाती तानकर खड़ा हो गया। बोला, 'दारोगाजी, मुझे भी गिरफ़्दार क लीजिये, मैं भी जेल जाऊँगा...'

"इतना कहकर जानू मुस्कराया और दोनों हाथ उस कांस्टेबल के आगे फैला दिये, जिसके तीन-चार हथकड़ियाँ लटक रही थीं। कांस्टेब ने भोली निगाहों से दारोगाजी की ओर देखा। अलग खड़े दो चौकी दारों ने आपस में कुछ कानाफूसी की और दारोगा के करीब आक बोले, 'हजूर, नमक तो दरअसल इसीने तैयार किया है। इसको छोड़ ठीक नहीं होगा...'

"भीम झा ने मुँह से तो हामी नहीं भरी, लेकिन भारी-सा अपन माथा जरूर हिला दिया।

"जानू के भी हाथों में हथकड़ी डाल दी गयी।

"फिर पहले की तरह नारे लगे, और जोश में आकर लोगों ने उन्हें दुहराया।

"जानू की इस दिलेरी से मैं बहुत खुश हुआ। किसीके हाथों में हथकड़ी डाली जाय, भला इसमें खुश होने की क्या बात थी?"

बाबा ने प्रश्नसूचक ध्वनि को अपनी अद्भुत भंगिमा से बेहद गम्भीर बना दिया तो जैकिसुन आवश्यकता से अधिक साकाश हो उठा

और उनकी ओर ग़ौर से देखने लगा। गर्दन लम्बी करके बाबा ने फिर कहा :

"बबुआ, यह कोई चोरी-छिनारी की गिरफ़्तारी तो थी नहीं, यह स्वाधीनता-संग्राम की गौरवमय परम्परा का एक सामान्य प्रदर्शन था। गिरफ़्तार होना, जेल के अन्दर क़ैद काटना, लाठियों की चोट बरदाश्त करना, पुलिस और मिलिटरी के फौजी बूटों से कुचला जाना...इन बातों से ज़रा भी नहीं घबराते थे लोग। सत्याग्रह और पिकेटिंग त्यौहार बन गये थे। पुलिस एक को गिरफ्तार करती तो उस एक की जगह दस आदमी आ डटते, दस गिरफ्तार कर लिये जाते तो उन दस की जगहों पर सौ जवान खड़े हो लेते। घरवाले सत्याग्रह या पिकेटिंग के लिए जाते हुए अपने आदमी को माला पहनाकर और टीका लगाकर विदा करते, मानो वह शादी करने जा रहा हो। गजब का जोश था बेटा, वह उत्साह का अपूर्व वातावरण था रे !

"जानू की गिरफ्तारी के बाद यहाँ उस दिन का सारा प्रोग्राम खतम हो गया। दोनों सत्याग्रहियों को लेकर पुलिसवाले थाने की ओर चल दिये और भीम झा घोड़े पर सवार होकर राजाबहादुर देवीदत्त की डेवढ़ी की तरफ़ बढ़ा।

"लोग अपने-अपने घर गये।

"दो रोज़ बाद कार से पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट आया, लॉरी में लदकर एक दर्जन मिलिटरी वाले आये। रात का वक्त था। चार-चार बैटरियों वाली टार्चों के तेज़ प्रकाश से समूचा गाँव रह-रहकर जगमगा उठता था।

"वीरभद्र बम पार्टी का आदमी था न ! उसीको वे गिरफ्तार करने आये थे।

"यह वीरभद्र पिछले सोलह महीनों से गाँव में नज़रबन्द था... बंगाल सरकार के हुक्म से। सत्याग्रह और पिकेटिंग से उसका कोई सम्बन्ध नहीं था। वह खुलेआम सत्य व अहिंसा का उपहास करता

था और महात्मा को महाधूर्त एवं पूँजीपतियों का दलाल बतलाता था। रूस के किसानों, मज़दूरों और सैनिकों ने क्रान्ति का जो रास्ता अपनाया था, वीरभद्र उसी रास्ते को भारतीय जनता की मुक्ति का एकमात्र मार्ग मानता था। बात-बात में उसके मुँह से मार्क्स और लेनिन के नाम निकल आते...

"पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट अँग्रेज था। वीरभद्र के चेहरे को टार्च की रोशनी में पहले उसने एक फ़ोटो से मिलाया, फिर गिरफ़्तार करके उसे चार फौजियों के हवाले किया। खुद चार फौजियों को लेकर मकान के अन्दर गया तलाशी लेने। तब तक दारोगा भीम झा भी अपने चार-छ जवानों के साथ वहाँ पहुँच चुका था।

"घर की औरतें घूँघट निकालकर एक तरफ़ हो गयीं। सयाने सहमे-सहमे-से दूसरी तरफ खड़े थे। भय, आश्चर्य और कौतूहल में डूबे बच्चे बीच आँगन में इकट्ठे हो गये थे। छोटे बच्चे दहशत के मारे अपनी-अपनी माँ की गोद में दुबके हुए थे। टार्च की तेज रोशनी में संगीनें रह-रहकर चमक उठती थीं। सिवाय बूटों की टापों के और कोई आवाज नहीं थी। वह ऐसा सन्नाटा था बेटा, जिसमें साँसें तक गिनी जा सकती थीं।

"छड़ियाँ, लाठियाँ, कुदालें, खुरपे, हँसिया, कुल्हाड़े, साग-भाजी काटने की हँसिया, बसूला, रुखान, खंती...यानी खेती-गिरिस्ती का एक भी औजार नहीं छोड़ा गया। सभी औजार बीच आँगन में जमा कर लिये मिलिटरीवालों ने।

"गोरा पुलिस आफिसर गरज उठा—'माइ गॉड, इतने हथियार!'

"गाँव-भर के लोग तब तक जमा हो चुके थे। टुनाई पाठक और जैनरायन झा ने हाथ जोड़कर साहब से कहा...'दोहाई माय-बाप की! ये हथियार नहीं हैं सरकार, ये तो खेती-गिरिस्ती के अपने औजार हैं। हुजूर-लोग काँटा-चम्मच से खाना खाते हैं, ब्रुश से दाँत साफ करते हैं, फ़ाउण्टेनपेन से लिखते हैं। हम गृहस्थों के लिए उसी तरह ये औजार

जरूरी है। हजूर, ये हथियार नहीं हैं, घर-गिरिस्ती के कामों की चीज़ें हैं...'

"इसके बाद दच्छिन की तरफ चेहरा करके पाठक और जैनरायन बोले... 'जाने गंगामैया, हजूर, हमारी बस्ती में एक भी हथियार नहीं है सरकार !'

"छडियों, लाठियों और कुल्हाड़े को बूट से ठुकराकर साहब गुर्राया —'डैमफूल, हम सब जानटा है ! यह किया है ? अमको डोखा (धोखा) नेई दो !'

"तब साहब ने मिलिटरी के एक जवान से पूछा तो उसने कहा, 'यह कुल्हाड़ा है सर, इससे लकड़ी काटी जाती है और गाय-बैल-भैंस हाँकने के लिए लाठी या छड़ी की जरूरत पड़ती है हजूर !'

"बूट पटककर गोरा कड़का—'बुक-बुक (बक-बक) कर्टा है! शट-अप!'

"तलाशी में कोई ख़तरनाक चीज नहीं मिली। वीरभद्र को मिलिटरी ट्रक में बैठा दिया गया। संगीनधारी फ़ौजी जवान उसे बीच में करके बैठे थे। सुपरिण्टेण्डेण्ट की मोटर और फौजी ट्रक स्टार्ट हुई, गाँव से बाहर निकली और उत्तर की ओर सड़क पर सर-सर खड़-खड़ करती हुई चली गयी...

"गाँव वालों ने चैन की साँस ली।

"सब जानते थे कि वीरभद्र को अवश्य पकड़ ले जायेंगे। सरकार सौ सत्याग्रहियों से उतना नहीं घबराती थी जितना बमपार्टी के एक अदना आदमी से। अब तक वीरभद्र को जो लोग आवारा और पागल समझते थे, उन्होंने इस घटना के बाद अपनी राय बदल दी। अब वह मामूली बीरू नहीं था, वीर बाँके भगतसिंह का साथी था।

"पीछे सुना गया कि वीरभद्र को हजारीबाग-सेण्ट्रल जेल के एक सेल में रखा गया। दयानाथ और जानू कुछ दिनों तक लहेरियासराय जेल में रखे गये, बाद को उन्हें पटना-कैम्प जेल पहुँचा दिया गया। सत्याग्रह और पिकेटिंग का जोर बढ़ा तो बिहार की एक-एक जेल ठसम-

ठस भर गयी। लाचार होकर अधिकारियों को पटना के नज़दीक फुल-वाड़ी-शरीफ़ से उत्तर एक भारी-सा हाता घेरकर 'कैम्प जेल' बनाना पड़ा था।

"सविनय आज्ञा-भंगवाला वह देशव्यापी आन्दोलन भी बीच में ही रोक लिया गया, गांधीजी का बड़े लाट इर्विन से समझौता हुआ था। तब तू वर्ष-भर का था बेटा !

"अँग्रेज सरकार ने कांग्रेस से यह सुलह इसीलिए की थी कि उसे सँभलने का मौका मिले। गांधीजी तो खुले-आम कहने लगे—'कांग्रेस ने कभी नहीं कहा था कि वह जीतकर ही रहेगी।'

"कांग्रेस के बाहर, नौजवानों की तरफ से और मजदूर-संगठन की तरफ से समझौते की तीखी नुक्ताचीनी हुई। नयी पीढ़ी के नेताओं में से सुभाष बोस-जैसे लोगों ने गांधी-इर्विन-पैक्ट पर काफी झुंझलाहट जाहिर की।"

"समझौते का फल क्या हुआ ?"

जैकिसुन की निगाहों में फिर सवाल तैरने लगा। अब वह बाबा के इस प्रवचन की समाप्ति चाहता था।

ज़रा रुककर बाबा बोले :

"१९३१ में *अँग्रेज़ों ने गोलमेज-कान्फ़्रेन्स का नाटक रचा।* इस देश के पचासों प्रतिनिधि उसमें शामिल हुए...गांधी, जिन्ना, अम्बेडकर और दूसरे बड़े-बड़े आदमी, सेठों के नुमाइन्दे, रियासतों के नुमाइन्दे, जमींदारों के एवजी, दीगर जमातों और जातियों के मुखिया...वह कान्फ़्रेन्स क्या थी, पूरी शिवजी की बारात थी ! जितने मुंह, उतने बोल ! विलायती राजनीतिज्ञों के मनोरंजन के लिए वह एक अच्छा अखाड़ा रहा।...समझौते का फल यही हुआ कि कुछ नहीं हुआ। गांधीजी सद्भावनाओं के गुब्बारे लटकाये हुए विलायत से वापस आये, ख़ाली हाथ !

"इधर दमन की शत-प्रतिशत तैयारी कर रखी थी सरकार ने, वह

कांग्रेस पर बिलकुल टूट पड़ी। साल-भर के अन्दर फिर एक लाख बीस हजार आदमी जेलों के अन्दर ठूंस दिये गये। कांग्रेस कमेटियों के दफ्तरों में ताले लटकने लगे।

"बड़े-बड़े नेता आराम से जेल पहुँचा दिये गये थे। सरकार को उनकी सुविधा-असुविधा का काफी खयाल रहता था।

"अन्त में सत्याग्रह बन्द करके गांधीजी ने अपनी असफलता कबूल कर ली। एक वक्तव्य में महात्मा ने कहा : 'सत्याग्रह का सन्देश जनता तक पहुँचते-पहुँचते अपवित्र हो गया है। हम जब आध्यात्मिक अस्त्रों का उपयोग आध्यात्मिक तरीकों से नहीं करते तो उनका कुण्ठित हो जाना अनिवार्य हो जाता है। हमारा यह सत्याग्रह अपूर्ण रहा, यही कारण है कि इससे शासकों का हृदय द्रवित नहीं हुआ...भविष्य में केवल एक व्यक्ति को सत्याग्रह करना चाहिए और वह व्यक्ति ऐसा हो जो कि सत्याग्रह करने के योग्य हो...'

"जानू और दया तो चार ही महीने जेल के अन्दर रहे, वीरभद्र लेकिन सात साल बाद बाहर आया...सो भी तब जबकि चुनाव के बाद कांग्रेस की मिनिस्ट्री क़ायम हुई और क्रान्तिकारी राजबन्दियों ने अपने छुटकारे के लिए अनशन आरम्भ कर दिया था।"

बाबा बटेसरनाथ थोड़ी देर चुप रहे।

फिर जैकिसुन की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा :

"घबराने की जरूरत नहीं है। अन्त में जीत तो तुम्हारी ही होगी। आज न सही, कल। कल न सही, परसों। मगर एक बात फिर कह दूँ ...मुझे रंच-मात्र झिझक नहीं होगी यदि मेरे यहाँ न रहने से रूपउली की जनता को यह जमीन कोई लाभ पहुँचा सके।"

१९४२ वाला जन-आन्दोलन जैकिसुन के लिए 'आँखों-देखा तमाशा' था। इसीसे उसने चाहा कि अब बाबा अपना प्रवचन समाप्त करें। मौजूदा संघर्ष के लिए अपनी ओर से बाबा ने जैकिसुन को पूरी छूट दे ही दी थी।

कुछ क्षण बाद वह वृद्ध व्यक्ति बरगद की ओर जाकर उसकी घनी शाखाओं मे अदृश्य हो गया।

१०

"उठ कितना सोता है !"

जैकिसुन ने पास में सोये हुए दो साथियो की पीठें बारी-बारी से थपथपायी।

जवाब कुछ नही।

अब उसने एक को झकझोरा..."जीवनाथ ! जीवनाथ !! ओ जी ऽऽ वना ऽऽऽऽ थ !"

जीवनाथ ने करवट बदल ली और फिर नाक बजाने लगा। अबके खीझ-भरी आवाज मे जैकिसुन ने कहा..."यहाँ दिमाग फटता है और नवाबो की नीद ही नही टूट रही !"

उसने आकाश की ओर देखा।

चन्द्रमा पश्चिम की ओर काफी नीचे उतर आया था अँजोरिया स्थिर और समान रूप मे घुल रही थी। उस पूर्ण और मधुर प्रकाश के कारण तारो पर ध्यान ही नही जाता था। प्रभाती समीर की तर सिहरन का अन्दाज पाकर जैकिसुन ने ताजगी महसूस की और पूरब की ओर मुँह कर लिया।

उषा की स्वर्णिम आभा अभी अलक्षित थी। हाँ, चुहचुहिया जरूर बोल पड़ी किसी तरफ से...'चुह चुह चुह चुह चुच्चूऽऽह चूऽऽ चूऽऽह ! चुह !!'

यह नन्ही-सी चिड़िया रात्रि-शेष में ही आवाज लगाती है। शुक्र तारा का उदय और चुहचुहिया की ध्वनि – दोनों ही निकट आ रही उषा की सूचना देते हैं।

जैकिसुन रात-भर जगा था, लेकिन रत्ती-भर कड़वाहट आँखों में नहीं थी। चित्त खूब प्रसन्न था। अब वह जीवनाथ और मरजुग से बातें करना चाहता था...

बाबा बटेसरनाथ ने आज उस पर कृपा की थी—पिछले युगों की बहुत सारी बातें बाबा ने जैकिसुन को बतलायी थीं और मौजूदा संघर्ष के बारे में अपना दृष्टिकोण साफ़-साफ़ ज़ाहिर किया था। यह कोई मामूली घटना नहीं थी, जिसको वह यों ही पी जाता। दर-असल वह बेचैन हो रहा था, सारी बातें अपने इन दोनों साथियों से बता देने के लिए।

जैकिसुन उठकर कुछ फ़ासले पर गया और पेशाब कर आया। फिर समूचे बदन का बोझ डालकर वह जीवनाथ पर झुक गया।

'ऊँह ! हुँह ! ओंह ! उंड़...' जीवनाथ ने नाक की अनुनासिक ध्वनियों के सहारे उस दबाव का प्रतिवाद-सा किया।

"उठता है कि नहीं ?"

"अभी तो काफ़ी रात पड़ी है।"

"नहीं रे, हो तो गयी सुबह..."

"हुँह।"

जैकिसुन ने एक बार और उसी तरह दबाव डाला तो जीवनाथ उठ बैठा। नाटा कद, साँवली सूरत और गोल चेहरा...

"क्या बात है ?"—आँखें मलते हुए जीवनाथ ने पूछा—"तुझे नींद क्यों नहीं आती है रे ?"

फिर वह उठ खड़ा हुआ, अँगड़ाइयाँ लीं और झटके से देह को सीधा किया। आसमान की तरफ़ निगाहें फेरता हुआ लघुशंका के लिए चला।

जैंकिसुन गुनगुनाकर गाने लगा :

"उठ जाग मुसाफिर भोर भई
अब रैन कहाँ जो सोवत है
जो जागत है सो पावत है
जो सोवत है सो खोवत है
उठ जा ऽ ऽ ऽ ग..."

"सचमुच अब रात नही है"—जीवनाथ ने लघुशंका से वापस आते हुए कहा। इतने मे उसे धरती की धमक महसूस हुई तो बोला—"चार बजे वाली पसिंजर निर्मली की तरफ से आ रही है। तेरी भैंसों को तो ले गया होगा चरवहवा, खोलकर अब चराने; है न ?"

"हूँ।"

सरजुग की नाक अब भी बदस्तूर बज रही थी। वही तीनों मे सबसे ज्यादा लम्बा और तगड़े डील-डौल का जवान था। चित्त लेटा पडा था। आधी बाँहो की बनियान पहन रखी थी, कमर मटमैली धोती से लिपटी थी।

जीवनाथ सरजुग के नजदीक बैठता हुआ बोला—"इसे भी उठा देता हूँ।"

"उहूँ, छोड दो..."

जैंकिसुन के इस निषेध पर जीवनाथ को थोडा-सा विस्मय हुआ अवश्य, परन्तु उसने कुछ कहा नही। जैंकिसुन की गति-विधि में आज उसे कुछ विलक्षणता अनुभव हो रही थी। समझ नहीं पा रहा था : रात-ही-रात में ऐसी क्या बात हुई कि जैंकिसुन की नीद उचट गयी ! क्या पता, यह रात-भर आज जगा ही रह गया हो ! लेकिन कहाँ, जीवनाथ ने तो उसे सोते पाया था : वह तो जाने कब से सो रहा था। जीवनाथ और सरजुग काफी देर के बाद यहाँ आये थे...

जीवनाथ गुमसुम इसी प्रकार कुछ सोच रहा था।

क्षण-भर बाद उसने अपनी हॉफ कमीज की पाकिट से बीड़ी और

माचिस निकाली। सलाई की तीली रगड़कर बीडी को सुलगाने लगा, होंठों से बिना लगाये ही—मानों आतिशबाज़ी का प्रयोग कर रहा हो वह !

सलाई की तीली समूची जल गयी तो बीडी का सिरा दहकता नजर आया। जीवनाथ ने उसे सीधे होंठों में न लेकर मुट्ठी के माध्यम से जोरो की दो कश खीची और ढेर-सा धुआँ मुँह से निकाल दिया।

दो-एक कश उसी तरह और खीचकर उसने कहा—"आज तुम्हे नींद नही आयी ?"

जैकिसुन ने जवाब नही दिया।

"जो होना होगा, हो लेगा"—जीवनाथ आहिस्ते से बोला—"आखिर, कब तुम्हारी नींद उचट गयी जैकिसुन ?"

जैकिसुन का मुँह खुला। उसने कहा—"भई, कह नही सकता, कब मेरी आँखें खुली और कब क्या हुआ..."

जीवनाथ की आँखों में विस्मय फैलता जा रहा था।

जैकिसुन ने सक्षेप में बाबा और उनकी बातें बता दी।

११

आषाढ़ में उस वर्ष खूब वर्षा हुई थी। नदियों मे व्यर्थ की बाढ़ नही आयी थी। बीच-बीच मे आसमान खुल भी जाता और बीच-बीच मे बादल बरस भी जाते...

सभी खेती के-अपने-अपने कामों में मशगूल थे।

बाबा बटेसरनाथ के शरीर पर कुल्हाड़े चलने-चलवाने की जो

किंवदन्ती फैली हुई थी लोगों में, वह अपने-आप दब गयी।

टुनाइ और जैनरायन की तरफ से इस प्रकार की अफवाहें यदाकदा उड़ा दी जाती थी। इसमें उद्देश्य उनका यही रहता कि आम लोगों की मानसिक प्रतिक्रिया का आभास मिलता रहे।

मगर बाबू जीवनाथ की अपने साथियों को कड़ी हिदायत थी—बायें-बायें मत करते फिरो, सबकी बातें गौर से सुन लो; बस !

सावन में टुनाइ का पोता साँप के काटने से मर गया—लोगों ने कहना शुरू किया : विधाता से नहीं देखा गया, आखिर बेईमान को उन्होंने चेतावनी दे ही डाली !

इस वज्रपात का पाठक-परिवार पर गहरा असर पड़ा। अगले तीन-चार महीने टुनाइ शायद ही मुस्कराया हो। जैनरायन घण्टों बैठकर जब-तब उसे समझाया करता। पाठक के नाम उसने 'कल्याण' चालू करवा दिया आखिर।

जैकिसुन लेकिन हमेशा चौकस रहता था—क्या पता, पाठक और जैनरायन के आदमी किसी दिन कुल्हाड़े लेकर बाबा बटेसर पर टूट ही पड़े ! उनका क्या ठिकाना ? पुरानी पोखर की कछार तो खैर बरसात के मौसम में पानी के अन्दर होने से आबाद नहीं की जा सकती, मगर बरगदवाली जमीन पर तो हल चल सकता है...

परन्तु उसकी यह आशका निर्मूल सिद्ध हुई।

आश्विन की पूर्णिमा आ पहुँची। धानों की मंजरियों के सूक्ष्म-सुरभित फूल अपना मन्द-मधुर परिमल शरद-समीर को लुटाने लगे, अब उनसे दूधिया दाने निकल आये। नुकीले दानोंवाली बालियों का वह विचित्र वैभव हेमन्त की अगवानी में अभी से झूम उठा।

रुपउली और आस-पास की बीसियों बस्तियों का जमीदार बाबू कृष्णदत्तसिंह राजाबहादुर देवीदत्त का इकलौता उत्तराधिकारी था। डेवढ़ी आरामपुर रुपउली से आधा कोस उत्तर पड़ता था। नये जमीदार ने पुरानी कोठियों से अलग एक फ्लैट बनवा ली थी। बिजली पैदा

करनेवाली मशीन बैठा रखी थी। ·

कातिक की अँधेरी रातों ने इस बार राजाबहादुर कृष्णदत्तसिंह पर मुसीबत का पहाड गिरा दिया—पिस्तौलों, बन्दूकों और टार्चों से लैस डाकुओं का एक भारी दल एक रात उसकी डेवढी पर चढ़ आया...दो घण्टे तक लूट-पाट मचाता रहा, जाते-जाते चार लाशें, सात घायल और अपनी दो बन्दूकें छोड़ता गया, और लेता गया पौने दो लाख का माल—नक़द, गहने, जवाहरात...

पास-पड़ौस के दस कोस के इलाकों मे हल्ला पड गया—बाप रे, ऐसी डकैती तो कभी नहीं कही पडी थी !

जिले-भर के पुलिस आफिसर और बड़े हाकिम राजाबहादुर की डेवढी के हाते में इकट्ठे हुए...चार घण्टे तक उनकी कानाफूसी चलती रही और फिर वे दरभंगा लौट गये।

राजामाता पर इस घटना का घातक प्रभाव पड़ा, दिल की धड़कन बन्द हो जाने मे वह हफ़्ते के अन्दर ही चल बसी। उसके बाद राजाबहादुर कृष्णदत्तसिह सपरिवार चले गये देवघर। बूढे दीवान टुनटुना मल्लिक के तो अफसोस के मारे दाढी और बाल बढ आये।

पीछे इस सिलसिले में परसादीपुर और सतगामा के चार जवान पकड़े गये। उनका सरगना बजरंगीसिह पुलिसवालो के हाथ नही आया, नेपाल के ऊपरी इलाकों की तरफ भाग गया। बजरंगीसिह पेशेवर डाकू तो नही था, लेकिन सन् १९२५ और १९३५ के दरम्यान क्रांतिकारियो ने जिन पट्ठों को राजनीतिक डकैतियों के लिए दीक्षित किया, जाने कैसे, बजरंगीसिह उनके सम्पर्क मे आ चुका था। और, अब जब वह फरार हो गया तो लोगों ने समझ लिया कि इस डकैती मे उसका हाथ अवश्य रहा होगा।

पाठक, जैनरायन और दारोगा चाहते थे कि इस काण्ड में जीवनाथ और जैकिसुन वगैरह को फँसा दें...

परन्तु उनका यह मनोरथ सफल नही हो पाया।

सफल इसलिए नहीं हो पाया उनका मनोरथ कि ज़िला-कोर्ट के सरकारी वकील बाबू रामचन्द्रसिंह एडवोकेट और सोशलिस्ट एम.एल.ए बाबू लोचन ठाकुर ने पुलिस-सुपरिंटेंडेंट और कलक्टर को स्पष्ट शब्दों में आगाह कर दिया था। पीछे दारोगा पर ज़िला-अधिकारियों की करारी डाँट पड़ी थी—ऐसी साहसिक दुर्घटना का छोर तुम रुपउली के उस गँवई मामले से छुआते हो ! ख़बरदार !

सरकारी वकील पतौर के रहनेवाले थे और जीवनाथ का ननिहाल उसी गाँव में था। ननियाउर का वही रिश्ता इस वक्त काम आ गया। लोचन ठाकुर दयानाथ के जेल के साथी रहे थे, वह परिचय भी सहायक सिद्ध हुआ, वरना बेचारे नाहक ही डकैती के मामले में फँसा लिये जाते।

१२

टुनाई पाठक का लड़का मुज़फ्फरपुर में इन्कमटैक्स का ऑफिसर था। नाम था नीलाम्बर पाठक। हाईकोर्ट के जज की भतीजी से उसका ब्याह हुआ। जज का वह खानदान ज़ालिम ज़मींदारों का खानदान था और अपनी काली करतूतों के लिए ज़िले-भर में बदनाम था। उनके यहाँ कई मशहूर वकील थे, ज़िला और प्रान्त के शहरों में कई एक ऊँचे ऑफिसर भी थे उनमें से। इसीसे हकूमत की मशीनरी हमेशा उनके अनुकूल रहती।

यह रिश्तेदारी टुनाई पाठक के लिए विधाता का वरदान थी। वह कई कुकर्म करके भी कानूनी तौर पर 'जज साहब का समधी' बना बैठा था। छोटे अफसरों का सम्मानपात्र और बड़े अफ़सरों का कृपापात्र था।

नीलाम्बर दीवानी की तातील मे घर आया और बाप को बरगद-वाली जमीन दखल कर लेने की तरकीब बताता गया । जैनरायन को अपने बेटे की राय दरकार नही थी इस काम के लिए, वह खुद ही शहूर चालाक था ।

चार कांस्टेबल और पड़ौस के गाँवों के चार चौकीदार साथ लेकर थानेदार आ धमका अगले ही रोज । लेकिन वह मौके पर नही गया, गया वह टुनाई पाठक के घर पर ।

दारोगा साहब आये हैं, इस खुशी मे पाठक ने बकरा कटवाया । खूब अच्छी तरह उनको खिलाया-पिलाया । देर तक हा-हा ही-ही होती रही और बैटरीवाले रेडियो पर लता मंगेशकर का सुरीला कण्ठ रह-रहकर लहराता रहा । और अन्त मे, बाबू टुनाई पाठक ने अपने इस रेहुआ-थाने के जनाब थानेदारसाहब के सामने गाँव के 'बदमाशों' की पूरी लिस्ट पेश की जिनसे उनकी जान और माल-असबाब को खतरा था ।

थानेदार ठाकुर रामफलसिंह अधेड़ उम्र के भारी-भरकम डीलडौल-वाले एक मुच्छड़ आदमी थे । चौड़ा कपार, लम्बोतरा चेहरा, छोटी-छोटी बादामी आँखें । खास बात यह थी कि तोंद ने बुरी तरह विद्रोह कर दिया था । पौने दो लाख की आबादी वाला यह थाना रेहुआ बिना ची-चपड़ के उनका अंकुश मानता था, लेकिन अपनी ही तोंद ठाकुर साहब का अनुशासन नही मानती थी ।

खाना-पीना हो चुका था । कांस्टेबल लोग भी जीम चुके थे । चौकीदार बैलों की बथान के करीब बैठकर चावल का भूँजा फाँक रहे थे, गोश्त-मछली तो दूर, मामूली भात-दाल तक के लिए वहाँ किसीने उनसे नहीं पूछा । हाँ, चावल के तीन-एक पाव दाने मिले थे भुने हुए, डोल-भर पानी रखा था आगे और कुछ दूर पर कुआँ था ।

आरामकुर्सी पर इत्मीनान से टाँगें फैलाकर थानेदार सिगरेट पी रहा था । बदन पर कॉलरवाली बनियान थी, कमर मे हाफ पैण्ट थी । फैली-फैली-सी वह खाकी हॉफ पैण्ट बैठने के उस आसन के लिए

फिट बिलकुल नही थी। वह बेशऊर, बातें मगर इस वक्त 'यूनाइटेड नेशन्स' (राष्ट्र-संघ) की कर रहा था। इतने में पाठक की दस-साला पोती वहाँ आ गयी और अपने बाबा से सटकर खड़ी हुई। लड़की का ध्यान अनायास दारोगा के बैठने की उस निर्लज्ज मुद्रा की तरफ चला गया। पाठक खुद एक मामूली कुर्सी पर बैठा था। बच्ची से उसने कान मे कुछ कहा। अगले ही क्षण वह अन्दर चली गयी।

'बदमाशों' मे ग्यारह आदमी थे। थानेदार ने एक-एक के बारे मे विस्तार से जानकारी हासिल की। चलते समय सबके नाम वह नोट कर चुका तो बोला—"टुनाई बाबू, घबराइयेगा नही! सबका भाग हम ठीक कर देंगे..."

"हजूर!"—पुलकित स्वरो मे पाठक ने कहा।

"हाँ, सरकार गुण्डागीरी बर्दास नही करेगी..."

"जी हजूर! सरकार का ही तो भरोसा है।"

"लिलबर बाबू को सब बात लिख दीजियेगा न?"

"जरूर लिख देंगे हजूर..."

दारोगाजी ने गाँव के बाहर घोडा खडा किया।

रजबाँध की ओर मे दो खेतिहर आ रहे थे। कांस्टेबलों ने उन्हें इशारे से रोक लिया।

चाबुकवाले हाथ को उठाकर थानेदार ने दूर के उस बरगद की ओर संकेत किया और पूछा—"वह बरगद किसकी जमीन मे पडता है? ठीक-ठीक बताना, देखा!"

उनमें से जिसकी उम्र ज्यादा थी, वह बोला—"सरकार, किसका नाम बताऊँ? वह जमीन तो मैं हमेशा परती ही देखता आ रहा हूँ। वहाँ आस-पास गाँव-भर की गायें घास चरती हैं। गाँव के लोग उस पेड़ के नजदीक उठते-बैठते हैं। गरमजरुआ (गैर-आबाद) जमीन है वह तो ...उस जमीन पर सबका हक है, हजूर।"

"जी, सरकार!"—कम उम्रवाले ने ताईद की।

आगे चलकर दारोगा ने दो-एक आदमी से और भी पूछा । जवाब तो कुछ-कुछ वैसा ही मिला ।

तीन-चार दिन बाद दो पुलिसवाले आये । उन्होंने टुनाई पाठक के दालान में अपना डेरा जमाया । गाँववालों को मालूम हुआ कि पाठक की हिफाजत के लिए सरकार की ओर से यह इन्तजाम किया गया है । दोनों सिपाही अब टुनाई पाठक के जान-माल की निगरानी करेंगे ।

ख़ास मेहमान थे वे पाठक के । दाल-भात, दो किस्म की तरकारियाँ, घी, दही, अचार और हफ्ते में तीन-चार बार मछली और खीर...बडे ठाठ से दोनों जून वे भोग पाते थे और तानकर सोते थे; ताश खेलते और रेडियो सुनते थे । बन्दूकें उनकी दीवार से टिकी खडी रहती । रात के वक्त उन्हें पाठक अन्दर रखवा देता ।

थानेदार और नीलाम्बर का विचार था जीवनाथ को फोड लेने का । इसके लिए दो बीघा बढ़िया जमीन दीवान टुनटुना मल्लिक से वे उसको दिलवाने की सोच रहे थे । पिछले किसान-आन्दोलन में तीन किसान लीडर थोड़ी-थोड़ी जमीनों के बदले हमेशा के लिए बैठा दिये गये थे । घाघ लोग इस बार भी उसी दृष्टि से समस्या को देखते थे । उनकी धारणा थी कि जीवनाथ गरीब है, जमीन का प्रलोभन कारगर रहेगा...

दो चतुर वृद्ध जीवनाथ की टोह लेने के लिए नियुक्त किये गये । उन्होंने जीवनाथ की माँ को बार-बार खोदा । उस स्त्री ने हमेशा यही जवाब दिया कि जीवू के कामों में वह किसी तरह का दखल नहीं देगी; हाँ, कोई बुरा काम करने लगेगा तो जरूर समझायेगी-बुझायेगी...बाकी, बेटा बेटा है और माँ माँ है । जीवनाथ की माँ को इस बात का गर्व था कि उसका बेटा सैकड़ों आदमियों का विश्वासपात्र है; कि पाँच पंच इकट्ठे हों और जीवनाथ वहाँ न पहुँचे तो वह पंचायत अधूरी घोषित की जाती है; कि गाँव का गरीब-से-गरीब आदमी जीवू को अपना समझता है—

दरजा आठ तक अंग्रेजी पढ़कर जीवनाथ ने स्कूल छोड़ दिया था—छोड़ क्या दिया, छूट गया था ! पिता का देहान्त हुआ एक ओर, दूसरी ओर सन् बयालीस का अगस्त आ धमका। चौदह वर्ष की आयु थी। थाना दखल करने के लिए जो जुलूस आगे बढ़ा था, जीवनाथ उसमें बहुत पीछे नहीं था। रेहुआ थाने का दारोग़ा डर के मारे गांधी-टोपी पहनकर काँपते शब्दों में किस प्रकार 'भारत माता की जय', 'महात्मा गांधी की जय' और 'हिन्दुस्तान आज़ाद' के नारे लगा रहा था—जीवनाथ को अच्छी तरह याद था। सकरी और मनीगाछी स्टेशनों के दरम्यान रेलवे-लाइन उखाड़नेवालों में वह भी तो था। फिर गाँव के अन्दर टॉमी आये तो औरतों को घरों में छोड़कर लोग मकई के खेतों में जा छिपे थे, लेकिन जीवनाथ नहीं गया था छिपने कहीं। एक गोरा उसके नजदीक आया और बोला—"कहो, अंग्रेज हमारा राजा है !" जीवनाथ ने चुप्पी साध ली तो टॉमी ने उसे घूँसा मारकर गिरा दिया था...उसके बाद अंग्रेजों की भाषा अंग्रेज़ी से जीवनाथ को घोर विरक्ति हो गयी और स्कूल छूट गया।

१५ अगस्त, '४७ के दिन जीवनाथ ने अपने घर के सामने लम्बे बाँस की ध्वजा गाढ़ी थी और तिरंगा झण्डा फहराया था। लोगों में दो सेर बताशे बाँटे थे। परसादीपुर के किन्हीं बाबू के यहाँ से हारमोनियम और तबला-डुग्गी माँगकर ले आया था और दिन-भर आज़ादी का त्यौहार मनाया था। रात को दीप जलाये थे, सेर-भर तीसी का तेल ख़र्च किया था।

फिर इलाके में कपड़ा-संकट, किरासन-संकट और चीनी-संकट आये तो बस्ती रुपउली का यह बहादुर उनसे जूझता रहा। थाना-कांग्रेस-कमेटी के मन्त्री ने कई बार समझाया : अपने घर की ओर भी तो ध्यान दीजिये जीवू बाबू ! वह फकीरी किस काम की जो अपनों की सुध ले ही नहीं...मगर जीवनाथ टस-से-मस नहीं हुआ।

जीवनाथ की इस रुखाई और साफ़गोई में मन्त्रीजी और परमिट

की लाइसेन्सवाले मारवाड़ी सौदागर का हाजमा खतरे में था। मन्त्री की कृपा से टुनाई पाठक का भतीजा रघुवीर रुपउली का हेडमैन बना दिया गया। थाना और जिला के कांग्रेसियों का स्वार्थी रुख देखकर जीवू का दिल उनकी ओर से फटने लगा। अब केवल नेहरू और विनोबा उसके लिए लीडर रह गये थे। जयप्रकाश नारायण पर भी उसकी कुछ श्रद्धा थी। कम्युनिस्टों के नाम पर वह जोशी और डांगे को थोड़ा-थोड़ा जानता था। कभी कोई पूछ देता तो जीवनाथ अपने को ईमानदार नेशनलिस्ट बताता। नेहरू और जयप्रकाश में उसे कोई भेद मालूम नहीं देता।

और, इसीलिए पिछले चुनाव में जीवनाथ ने एक वोट कांग्रेस को दिया और दूसरा (पार्लियामेण्ट वाला) सोशलिस्ट पार्टी को। वोट के बारे में अपनी यह राय उसने साथियों से भी बता दी थी। खुल्लमखुल्ला सोशलिस्टों को वोट देना चाहिए—जैकिसुन की राय तो यही थी, लेकिन जीवनाथ उससे सहमत नहीं था।

क्यों नहीं सहमत था ?

सहमत इसलिए नहीं था कि अब भी जीवनाथ को कांग्रेस से कुछ उम्मीदें थीं। वह नाहक कांग्रेस को दुश्मन बना लेने के पक्ष में नहीं था। अधिकारियों या नेताओं को यह कहने का मौका वह नहीं देना चाहता था कि रुपउली के किसान कांग्रेस-विरोधी हैं। उसने जैकिसुन को समझा-बुझाकर मना लिया।

आजकल बरगदवाली जमीन पर समूचे गाँव की नज़र लगी हुई थी। पुरानी पोखर भी लोगों की चर्चा का विषय थी। नब्बे प्रतिशत आदमी ऐसे थे जिनका इन झगड़ों से सम्बन्ध था। टुनाई और जैनरायन का कहना था कि वह बेकार पड़ी हुई जमीनों को आबाद करना चाहते हैं, इसमें भला किसीका क्या बिगड़ता है ? जमींदार तो अपनी जमीन छोड़ेगा नहीं; वे नहीं लेते, कोई और ले लेता; रुपउली वाले 'ना' करते तो पड़ोस के किसी गांव का कोई लिखवा लेता। क्या बुरा है,

गाँव की जमीन गाँववालो के पास रही...जीवनाथ चाहें, वही रख लें; करें वही इस जमीन को आवाद...न वह पोखर ही किसी काम की रही और न वरगद का वह पेड ही किसी काम का रहा ! यह नाहक टटा खड़ा करते है अव जीवू । कोई कुछ नही वोलता है फिर वही क्यो बीच मे टाँग अड़ाते हैं ? क्या मशा है वावू जीवनाथ की, कुछ मालूम भी तो हो !

गाँव के नौजवान इन भली-भली वातों का मतलव खूव समझते थे। 'सत्तर चूहे खाकर विल्ली चली हज को', सो उनसे छिपा नही था । पाठक की माँ वर्ष में एक बार भागवत का पारायण करवाती थी, नौ दिनो तक । जैनरायन के घर प्रतिमास, सक्राति के दिन, सत्यनारायण की पूजा होती थी । परन्तु इससे क्या ! जमीन की उनकी भूख का न ओर था, न छोर...परमार्थ और स्वार्थ साथ-साथ चलते रहे इन परिवारो में।

छोटी जात के गरीव लोग जीवनाथ के प्रति आदर और श्रद्धा के भाव रखते थे अवश्य, परन्तु टुनाई पाठक का उनपर भारी आतंक था। इसके अलावा, अकाल के दिनों में पाठक उन्हे अनाज देता था—भले ही पीछे ड्योढ़ा वसूल कर लेता, लेकिन तत्काल तो उनके वच्चों की प्राण-रक्षा इससे हो जाती थी । पाठक और जैनरायन के आदमी उन्हे अक्सर समझाते रहते थे : जमीन अगर किसीने वेच दी और किसीने ख़रीद ली तो इसमे भला कौन-सा आसमान फट पडा ! परती जमीन जोत मे आयेगी तो अनाज की वढती होगी और इसमे अपना गांव सुखी होगा...उस वौनें वरगद के पीछे भला क्यों कोई सती होगा ? और, उस रद्दी पोखर के लिए किन आँखों मे भला आँसू आयेंगे ? हाँ, जीवनाथ का अपना कोई स्वार्थ इससे सधे तो सधे !

एक गूंगा और वौड़म चमार था । पहला पति मर जाने के वाद रुपउली में यह दूसरी शादी की थी उसकी माँ ने । नयी गृहस्थी मे उस चमारिन के कई एक लडके हुए जो अव सयाने हो रहे थे । नये पिता को पुराने पिता के पुत्र मे कोई दिलचस्पी नही थी । शत्रुओं को फँसाने

की नीयत से पाठक ने डेढ़ सौ रुपये पर उससे गूंगे की जान का सौदा किया और दो ही रोज बाद बेचारा बाँसों की झुरमुट में बेजान पाया गया। गर्दन और माथे पर गँडासे के घाव थे; चेहरा लहूलुहान था।

ख़बर पाते ही थानेदार साहब पहुँचे, बन्दूकों से लैस पुलिस के दस जवान उनके साथ थे।

लाश टाँग-टूँगकर दरभंगा की ओर रवाना की गयी। हत्या के अभियोग में पाँच आदमी गिरफ्तार हुए...

१. जीवनाथ राय,

२. सरजुग महतो,

३. जैकिसुन यादव,

४. लछमनसिंह, और

५. सुतरी झा।

हथकड़ियाँ डालकर पाँचों को लहेरियासराय-जेल की हाजत में पहुँचा दिया गया।

कोर्ट में मुकदमा दायर हुआ, सरकार स्वयं मुद्दई हुई और जीवनाथ वग़ैरह पाँचों-जने मुद्दालह बनाये गये।

१३

दयानाथ जहाज (स्टीमर) से गंगा पार करके दीघाघाट उतरा और वहाँ से रिक्शा किया, सीधे आर ब्लॉक पहुँचा। ८ नम्बर के क्वार्टर में उग्रमोहनदास का डेरा था।

बाबू उग्रमोहनदास रेहुआ-थाना की जनता के प्रतिनिधि थे, एम०

एल० ए० । पाँच उम्मीदवारों को हराकर आप ही चुने गए थे कांग्रेस की टिकट पर । की तो थी आपने वकालत पास, लेकिन मास्टरी का पेशा ही आपको प्रिय था । '३०-'३२ के आन्दोलन में नमक बनाकर जेल गये थे,'४२ के दिनों मे छ. महीने फ़रार रहे और बाद को पकड़ गये तो दो साल की सजा हुई थी । पीछे दासजी ने साहित्य-सेवा आरम्भ की । कई एक आलोचनात्मक ग्रन्थ लिखे, जो छपे तो अवश्य, परन्तु प्रकाशक की गोदामों और स्थानीय बुक्सेलरों के शो-केसों तक सीमित रह गये । कुछ महीनों तक दास बाबू साप्ताहिक 'प्रभात' निकालते रहे, जिसके कुछ पृष्ठ हिन्दी मे होते और कुछ मैथिली में । सम्पादकी से जी भर गया तो आठ महीने जाकर पाडिचेरी रह आये । महर्षि अरविन्द की वह छत्रछाया उग्रमोहन बाबू को बड़ी शीतल और शान्त प्रतीत हुई थी । आप वहाँ से यही निश्चय करके लौटे कि आगे राजनीतिक हलचलों में शामिल नहीं होंगे । सुखी काश्तकार-ख़ानदान में जन्म था और भाइयों में सबसे छोटे थे—इसी कारण दासबाबू पर दुनियादारी का बोझा कभी नहीं पड़ा । स्त्री भी ऐसी मिली जो ज़मीदार बाप की इकलौती थी...क्या राजनीति, क्या साहित्य-निर्माण, क्या अध्यात्म और क्या वेदान्त, क्या सभा-सोसाइटी और क्या लोक-सेवा—सब-कुछ आपके लिए विशुद्ध मनोरंजन था। पिछले एलेक्शन में प्रादेशिक कांग्रेस कमेटी के एक ग्रुप ने आपको अपना उम्मीदवार घोषित किया और दूसरे ग्रुप ने हल्की-सी मुखालफ़त की तो उग्रमोहन बाबू सीधे दिल्ली-दरबार पहुँचे और मुस्कराते हुए वापस आये । डिप्टी मिनिस्टर होने की चास थी, मखौल तो कोई था नहीं । वोटिंग से चार-छः रोज़ पहले वह रुपउली भी आये थे; द्वार-द्वार पर हाथ जोड़कर लोगों से 'भोट-भिक्षा' माँगी थी ।

और दयानाथ राय तो उग्रमोहन बाबू को बीस वर्षों से जानता था—तभी से जब कि पटना-कैम्प जेल में एक ही इलाके के होने के नाते दोनों में परिचय हुआ था । चुनाव के ज़माने में तो कई बार देखादेखी हुई थी ।

जीवनाथ और जैकिसुन ने वेदख़ली के इस झगड़े की ख़बर कई बार अख़बारों में दी थी। कई अख़बारों ने उस समाचार को छापा भी था। इसके अलावा, जिला-प्रदेश और केन्द्र की कांग्रेस कमेटियों के प्रेसिडेण्टों के नाम सारी बातें तफ़सील से लिख भेजी थीं रजिस्ट्री-पोस्ट द्वारा। भारतीय प्रजातन्त्र के प्रेसिडेंण्ट बाबू राजेन्द्रप्रसादजी और महामन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू के नाम भी दरख़ास्तें की थीं। और कहीं से कोई जवाब नहीं आया था—हाँ, राष्ट्रपति-भवन, नयी दिल्ली से पहुँच की मंजूरी के तौर पर एक पत्र आया था। हिन्दी में टाइप किया हुआ पत्र, निहायत ख़ूबसूरत कागज़ पर। उस पत्र में था इतना ही कि राष्ट्रपति के सचिव के कार्यालय में आपका पत्र पहुँच गया है...

उग्रमोहन बाबू को इन बातों की जानकारी थी और अभी चन्द रोज़ पहले 'इण्डियन नेशन' से यह भी मालूम हुआ था कि रुपउली में क़त्ल हुई है, पाँच आदमी गिरफ़्तार हुए हैं उसी सिलसिले में।

क़त्ल की असलियत मालूम करके दासजी गम्भीर हो गये। दयानाथ ने उनसे अनुरोध किया कि वह ख़ुद रुपउली चलकर मामले की तहक़ीक़ात करें। वेदख़ली रुकवाने के लिए दयानाथ स्वयं मालमन्त्रीजी से आश्वासन पाना चाहता है, यह बात एम० एल० ए० साहब को ठीक नहीं जँची। प्रकट तौर पर वह बोले—"घबराने की कोई ज़रूरत नहीं, सार्वजनिक उपयोग की भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार विधाता का भी नहीं हो सकता। मिनिस्टर इसमें क्या करेंगे? मैं कलक्टर को सब बातें समझा दूंगा...अभी आप आराम कीजिये दया बाबू, जाइयें!"

नौकर ने बाहर बरामदे की ओर इशारा किया और दयानाथ वहाँ कम्बल बिछाकर लेट गये।

दिन ढल चुका था। चार बजनेवाले थे। गंगा के उस पार हरिहर-क्षेत्र में महामेला लग रहा था। वहाँ सामूहिक विकास-योजना के सम्बन्ध में कोई प्रदर्शनी थी, जिसका आज ही सात बजे शाम को उद्घाटन था। कुछ एम० एल० ए० अग्निबोट (स्टीम-लांच) से गंगा पार करके

वहाँ पहुँचनेवाले थे।

ठीक पाँच बजे उग्रमोहन बाबू अपनी बैठक से निकले। दयानाथ की ओर एक नजर फेंककर दूसरी नजर उन्होंने उठी हुई बाईं कलाई पर टिका दी, फिर बाजारू मुस्कानों से उस किसान की वेधक दृष्टि को धकेलते हुए-से बोले—"मैं अब परसों लौटूंगा...आज भी एक स्पीच देनी है और कल सोनपुर में आभा साहित्य-परिषद् का कोई फ़ंकशन है और परसों हाजीपुर का किरण-मण्डल कौमुदी-महोत्सव मनायेगा...हीं-हीं-हीं-हीं...आप रहियेगा तब तक ! मैं परसों रात लौटूंगा, नहीं तो उससे अगली सुबह..."

दयानाथ पर जैसे ओले पड़ रहे हों, वह उठकर बिलकुल खड़ा हो गया। कम्बल समेटने का उपक्रम करता हुआ-सा बोला - "तो मैं भी चलूं ? मेला देखूंगा..."

नेताजी ने खीझ को दबाकर कहा —"नहीं जी, नहीं। कहाँ जायेंगे आप ? इतनी दूर से आये है, आराम कीजियेगा अब कि भटकियेगा मेले में जाकर !"

फिर उन्होंने नौकरों से कहा—"देखना रे, भाईजी रुपउली के रहने-वाले है...इन्हें कोई तकलीफ-उकलीफ न होने पाये !"

"जी मालिक !"—नौकर के मुँह से निकला।

चमकदार पेशावरी चप्पलों और नफीस ऊनी मोजों में कसे-लिपटे दासजी के चरणकमल सीढ़ियों से नीचे उतरे। उतरकर तीन-चार कदम आगे बढ़े, फिर रिक्शे पर विराजमान हो गये।

दयानाथ देर तक बरामदे में खड़ा रहा। जिस ओर रिक्शा गया था उसी ओर देखता रहा और फिर दीवार में पीठ टिकाकर बैठ गया। था तो वह सोचने की मुद्रा में, लेकिन दिमाग की रग-रग ऐंठ गयी थी, कुछ भी सोचने को जी नहीं कर रहा था। कुछ देर पहले प्यास महसूस हुई थी, अब उसका भी पता नहीं था कहीं...

मगर इस तरह वह कब तक बैठा रहेगा ? नहीं। उसने अब अपने

को सँभाल लिया—अण्टी से चुनौटी निकाली दयानाथ ने, आधी बाँहों-वाली गोल-कट बनियान की पाकिट से तम्बाकू का पत्ता निकाला। नाखूनों से तम्बाकू खोंट-खोंटकर वह सुरती तैयार करने लगा। अब चिन्तन की उसकी चरखी घूमने लगी, आस्ते-आस्ते :

पाठक और जैनरायन की अगर इसी तरह चली तो समूचा गाँव मसान बन जायगा। जमीदार बाबू कृष्णदत्तसिंह और उसका दीवान मल्लिक अब भी अपनी जालिमाना हरकतों मे बाज नही आया तो आदमी आदमी को खाने लगेंगे। थानेदार और जिला के अधिकारी यों ही छूट-कर यदि चरते रहे तो भारतमाता की इज्जत-आबरू लुट जायगी...किस उमंग मे दयानाथ नागपुर गया था झण्डा-सत्याग्रह में शामिल होने। किस उत्साह से उसने नमक-कानून तोडा था। उछलता हुआ कैसा दिल लेकर वह दोनों बार जेल के अन्दर पहुँचा था ! ! हजारों और लाखों आदमी उसी की तरह जेल गये। सैकडो फाँसी पर झूले। हजारों के परिवार टूटे...तब आकर यह आजादी हासिल हुई है...

आजादी ! छि. ! आजादी मिली है हमारे उग्रमोहन बाबू को, कुलानन्ददास को...काग्रेस की टिकट पर जो भी चुने गये हैं उन्हे मिली है आजादी। मिनिस्टरों को तो और ऊँचे दर्जे की आजादी मिली है। सेक्रेटेरियट के बड़े साहबों को भी आजादी का फायदा पहुँचा है।

'३२ मे जेल से छूटा, तब से दयानाथ की दिलचस्पी इन मामलो में कम हो गयी। गाधीजी ने सत्याग्रह-आन्दोलन सार्वजनिक तौर पर वापस ले लिया, आगे आन्दोलन को व्यक्तिगत दायरे मे सीमित कर दिया उन्होने। यह दयानाथ की समझ मे बिलकुल नही आया। उसकी यह धारणा पक्की हो गयी कि राजनीति गरीबों और मूर्खों के लिए नही हुआ करती, वह तो बस खाते-पीते सयानों की चौपड है।

'४२ के तोड़-फोड और ९ अगस्त की उथल-पुथल के दिनो में दयानाथ बुरी तरह बीमार था लेकिन जीवनाथ की उछल-कूद उसे अच्छी ही लगी थी। "चाचा की विरासत अबकी भतीजे ने सँभाली"—इस

बारे में गाँव के सभी लोग एकमत थे...चाचा को जीवू उन दिनों अखबार सुनाया करता, चारपाई के करीब बैठकर। अखबारों का छपना अंग्रेज-सरकार ने नामुमकिन कर दिया तो जाने कहाँ से और कैसे लिखावटी छापे में 'रणभेरी' निकलने लगी। उसके दो-ही-तीन अंक जीवनाथ के हाथ लगे थे। लेकिन भतीजे ने उसमें भी चाचे से साझेदारी निभायी।

१५ अगस्त '४७ के बाद स्वदेशी शासकों के रंग-ढंग देखकर दयानाथ अन्दर-ही-अन्दर कुढ़ता रहा और जीवनाथ को जब-तब समझाता रहा। भतीजा बाकी सब-कुछ सुन लेता था, लेकिन नेहरू की आलोचना उसके लिए असह्य थी।

बेटे दो थे दयानाथ के। एक बी०ए०, बी० टी करके सुपौल (जिला सहरसा) के किसी हाई स्कूल में असिस्टेण्ट हेडमास्टर था और दूसरा खेती-गिरिस्ती सँभाले हुए था। जीवू को भी 'औरसपुत्र' समझते थे दयानाथ राय।

बाबू दयानाथ सुरती फाँककर उठे, अन्दर झाँककर नौकर से पूछा : "पाखाना किधर है ?" फिर गठरी से अपना लोटा निकालकर उन्होंने पानी लिया और नौकर ने जिधर बताया था, उधर को हुए।

नेताजी का यह क्वार्टर एक तरह से खाली पड़ा था। नौकर था और स्वयं थे, बस। कुछ दिन पहले तक एक अंग्रेजी दैनिक के न्यूज-एडीटर रहते थे। उसी बड़े रूम में अब कोई प्रोफेसर आकर रहेगा... अक्ल की बदहज़मी के कारण, या क्यों, नेपाली नौकर ने दयानाथ से यह सब बता दिया जब कि पाखाने से आकर हाथ मटिया रहे थे।

"मेरा खाना मत बनाओ !"

दयानाथ के इन शब्दों से नेपाली छोकरे को विस्मय हुआ। जिज्ञासा में गर्दन लम्बी करके उसने मुँह बा दिया...

"मैं अभी जा रहा हूँ बाँकीपुर की तरफ"-- दयानाथ ने सामान की गठरी सँभालते हुए कहा —"रात उधर ही गुज़रेगी और कल सुबह

के जहाज से वापस जाना है। समझे ?"

स्वीकृति में नेपाली का सिर हिला।

बेचारे की कुछ समझ में नहीं आया कि आखिर वह चूल्हा सुलगाये कि नहीं। मालिक जब नहीं हैं और मेहमान भी जब जा रहा है तो सिर्फ अपने पेट के लिए क्यों वह नाहक हाथ काले करे ?

छुट्टी का अहसास होते ही उसका पिरौंछ (पीताभ) चेहरा जगमगा उठा, खुशी के मारे बत्तीसों दाँत दर्शनीय हो गये।

दयानाथ ने अपनी गठरी उठायी और रुख़ हार्डिंग पार्क की ओर किया।

वह किसान-सभा के लीडरों से बातें करने जा रहा था। उसे मालूम था कि लंगरटोली में कहीं उनका दफ़्तर है।

१४

तीन वर्ष बाद, इस बार अगहनी फसल इतनी अच्छी आयी थी। राजबाँध के पास का मैदान धान के वजनदार शीशों का लहराता समुद्र हो रहा था। अमनी और कलकी पकनेवाली थी। अधपकी बालियों की मीठी सरसराहट हेमन्त की हल्की बयार को मादक खुशगवार प्रदान कर रही थी। उत्तरायन की ओर बढ़ते सूरज की स्वर किरणें उसमें रुपहला और चन्दनकान्त आलोक भरती थीं। शरद की शेष-प्रकृति धान की इन फसलों में गन्ध-गौरव डाल गयी थी। फलित धानों का वह प्रिय दर्शन पारावार रुपउली के एक-एक व्यक्ति को पुलकित किये हुए था।

लेकिन पांच-पांच जवान जेल के अन्दर बन्द थे। देव-उठान (प्रबोधिनी एकादशी) का त्यौहार बड़ा ही फीका गुज़रा। लोगों का दिल बैठ गया था, फिर वे भगवान् को शेषशय्या से किस प्रकार उठाते? गोबर से लिपे हुए आँगन ऐपन (आलपना) के भूखे थे परन्तु पांच परिवारों की स्त्रियों के हृदय में कोई आनन्द या उल्लास नहीं था। उन्होंने सिर्फ रस्म अदा करने के लिए पूजा की जगहों पर मामूली-से ऐपन डाल दिये थे।

मर्द चुप नहीं बैठे थे। एक तरफ हाजतियों की जमानत के लिए दौड़-धूप जारी थी, दूसरी तरफ बेदखली के ख़िलाफ प्रतिरोध-आन्दोलन संगठित हो रहा था।

ऊपर-ऊपर मामला ठंडा दीखता था, मगर अन्दर-ही-अन्दर दोनों ओर संघर्ष की तैयारियाँ चालू थीं।

टुनाई पाठक अपने-आपमें आतंकित हो उठा था। 'सीधी कार्रवाई' की अपने लड़के की यह पॉलिसी उसे पसन्द नहीं थी। लड़का तीन-चार महीने बाद दो-एक रोज़ के लिए रूपउली आ जाता था, मेहमान की तरह। मगर पाठक का रहना तो रात-दिन और बारहों महीनों इसी बस्ती में होता था...समूचे गाँव को दुश्मन बनाकर जीना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य था। चमार की हत्या और उस हत्या के अभियोग में पांच आदमियों की गिरफ्तारी और दयानाथ राय का एकाएक पटना जाना-आना और उसके बाद रात के वक्त छिपे तौर पर अक्सर मुहल्ला-मीटिंग और मुकदमे में अदालत की ओर से ढिलाई... भारी अन्देशे की बात थी यह सब पाठक के लिए। उसको नीलाम्बर पर खीज उठती थी और अपने पर गुस्सा। गुस्सा इसलिए कि क्यों वह बरगदवाली जमीन के झंझट में पड़ा! दस-बारह वर्ष पहले की स्थिति सो अब रही नहीं, जबकि जमींदार रातों-रात खेत बन्दोबस्त दे देते थे और चुटकी बजाते-बजाते उन खेतों पर कब्जा भी अपना हो जाता था। जैनरायन की ही सूझ थी यह, उसीका दिल छछूंदर की तरह

छुछुआता रहता है, वरना पाठक को क्या पड़ी थी कि इस ऊसर-बंजर जमीन का झगड़ा मोल लेता ! नीलाम्बर की अक्ल पर पाठक को तरस आती...

सवा तीन-साढ़े तीनसौ रुपये वेतन पाते हो। घर में किसी वस्तु की घटी-कमती नहीं है। ससुराल की भी दौलत मिलनेवाली है... और किसी चीज की हवस हो तो ठेका-पट्टा लो, सवारी ढोनेवाली लारी का कण्ट्राक्ट लो, शहर में एक-आध अच्छी फ्लैट खड़ी कराकर उसे भाड़े पर लगा दो, देहात मे खेती-बाडी ही पसन्द हो तो जमींदारी-काश्तकारी खरीदकर कोई फारम खड़ी करो और ट्रैक्टर दौड़ाओ ! सो नही करेंगे ! करेंगे क्या कि चोर की तरह चुपचाप गैर-मजरूआ जमीन बन्दोबस्त लेंगे और सारी दुनिया को अपना दुश्मन बना लेंगे ! चौड़ी राह के बीचों-बीच बरगद का पेड है, चालू रास्ता है। हमेशा से इस भूमि पर लोगों का समान अधिकार रहा है...अब तुम इसके चारों ओर कांटेदार तार डालोगे ? बरगद का खात्मा करके वहां तुम कौन-सी फैक्टरी खड़ी करने जा रहे हो बाबू ? शहर मे पढ़-लिखकर तुम सयाने हुए, अब शहर में रहकर ही सरकारी नौकरी कर रहे हो—चार दिन भी तो देहात में तुम्हारा जी नही लगता है बबुआ ! फिर क्यो तुम गांववालो की जिन्दगी में यह उपद्रव खड़ा करना चाहते हो ? भले तो शहर में हो, जनानी डेरा भी साथ रहता है, बच्चों को भी साथ रखते हो ! फिर यह क्यों लार टपकाते हो चार कट्ठा जमीन के लिए ? बताओ बेटा, ! बताओ, जरूर बताओ...देखना मुझसे छिपाना मत !...

पुरानी पोखर के कछार में एक दिन तड़के दो हल चलने लगे तो बस्ती-भर में सनसनी दौड़ गयी। जैनरायन का छोटा भाई फन्नी भिड़े पर स्वयं मौजूद था। उसीकी निगरानी मे जुताई शुरू हुई थी...

यह पुरानी पोखर सालों से बेकार पड़ी थी। किसी युग में राजा की सास ने इस पोखर को खुदवाया था, सैकड़ों साल पहले। अब उथली-

छिछली हो आयी थी। बरसात के दिनों में पोरसा-भर से ज्यादा अथाह पानी इस पोखर में कभी नहीं देखा गया। अब जमीदार बाबू कृष्णदत्तसिंह के लिए भी किसी काम की नहीं रह गयी थी। जिन पोखरों में पानी बारहों महीने टिकता है उन्हें मल्लाह आसानी से बन्दोबस्त ले लेते हैं—मछलियाँ पालते हैं, मखान उपजाते हैं, सिंघाड़े पैदा करते हैं...मगर 'यह पुरानी पोखर अब उन कामों के लायक नहीं रह गयी थी। घुटने-भर पानी और नीचे कीचड़-ही-कीचड़। पनियाही घासों का जंगल ऊपर-ऊपर फैला रहता और मलेरिया के मच्छर उसमें किलोल किया करते। मुंह-अँधेरे सुबह-सुबह या फिर शाम को झुटपुट अँधेरे के बाद इस जलाशय में लोग आते आबदस्त लेने। शौचार्थी करपात्रियों की आबदस्त लेते समय की 'छप्प-छप्प' की अजीब आवाज नागरिक अतिथियों के लिए सर्वथा नयी हुआ करती। जो हो, इस तलइया पर रुपउली के एक-एक आदमी का बराबर हक था। यह उनकी कल्पना के परे था कि कोई पुरानी पोखर को खरीद लेगा या बन्दोबस्त ले लेगा और इसमें धान उपजायेगा या किसी दूसरे व्यक्तिगत काम में इसका उपयोग करेगा।

दयानाथ राय नयी पोखर के मुहार पर बैठकर दतुअन कर रहे थे, इसके बाद उन्हें नहाना भी था। धोती ले आये थे, सो वह चुनियाई हुई अलग दूब पर रखी हुई थी।

दो-तीन लड़कों ने इतने में हल्ला किया :

"पुरानी पोखर में हल चल रहे हैं बा ऽ बा ऽ ऽ ऽ !"

बाबा ने हल्ला सुनते ही जल्दी से दतुअन चीरकर जीभ साफ की और कुल्लियों से मुंह साफ किया। अँगोछे से हाथ और चेहरा पोंछते-पोंछते खड़े हुए।

लोटा और धोती दयानाथ ने वहीं छोड़ दी और झटकारते हुए आगे बढ़े।

पुरानी पोखर गाँव के दच्छिन-पच्छिम दिशा में थी। नयी पोखर पूरब-उत्तर की ओर। बीच में बाग थे, बस्ती थी। इमली, पीपल और

पाकड के कई पेड़ थे। नहाने-धोने के लिए गाँववालों के पास अब यही नयी पोखर शेष थी।

गाँव की पूरब तरफ से होते हुये दयानाथ निकल आये। रजबाँध पर पैर रखते ही पुरानी पोखर की कछार मे हल-बैल दिखायी पड़े। जुताई चालू थी। दस-पन्द्रह जने एक ओर और तीन-चार आदमी दूसरी ओर ...हाठ उठा-उठाकर ज़ोर से वे बाते कर रहे थे।

रास्ता छोड़कर दयानाथ ने खेतों की मेड़ पकड़ ली, रफ्तार उनकी और भी तेज़ हो गयी।

पुरानी पोखर की भिंड भी अब ऊँची नही रह गयी थी। वहाँ पहुँचते ही दयानाथ ने ज़ोर की आवाज़ दी—"ठहर जाओ !"

दयानाथ की आवाज़ सुनकर हल्ला-गुल्ला तो रुक गया, लेकिन जुताई नही रुकी, हल-बैल और हलवाहे नही रुके।

क्षण-भर की चुप्पी के बाद दयानाथ ने फन्नी से कहा—"तुम्हारे भाई कहाँ है ?"

फन्नी के हाथ में बेंत की मोटी छड़ी थी। छड़ी की नोक से धरती पर 'फणीन्द्रनारायण झा' लिखते हुये उसने गम्भीरता से जवाब दिया—"कहिये न, क्या कहते है ?"

"तुमसे क्या कहूँ ! जैनरायन कहीं बाहर गये हैं ?"

"हाँ, लहेरियासराय गये है। क्या चाहते हैं आप ?"

दयानाथ को हँसी आ गयी। वह मामूली हँसी नहीं थी, चुनौती को कबूल कर लेने की हँसी थी वह।

अब तक दयानाथ के पीछे पचास-एक आदमी इकट्ठे हो गये थे। फन्नी के पक्ष मे वही चार-पाँच आदमी—दो उसके अपने ही भतीजे और दो बनिहार तथा एक नौकरानी।

दयानाथ ने दृढ स्वरों में फन्नी से कहा—"नाहक झगड़ा-फसाद बढ़ेगा, तुम अपने हल-बैल वापस ले जाओ फन्नी ! काफी धन-सम्पदा भगवान् ने तुम लोगों को दी है, पोखर की कछार पर समूची बस्ती का

अधिकार है..."

"उँ हूँ"—बीच मे ही फन्नी चिल्ला उठा—"सो, कहाँ होगा दया-भाई ! इस वक्त आप दूसरी चाहे जो वात मुझसे मनवा लें, यह वात आपकी मैं नही मानूंगा।"

"नही मानोगे ?"

"नही मानूंगा, नही मानूंगा और नही मानूंगा !!"

"अच्छा वावू !"

दयानाथ ने लोगों की तरफ गर्दन फेरी।

दाहिने हाथ से समाधान चाहनेवाला संकेत करते हुए उन्होंने भीड़ से पूछा..."तुम सबकी क्या राय है ?"

"कछार में या भिड पर हल नहीं चलेगा"...लोगों ने एक स्वर से कहा।

दयानाथ ने फिर पूछा—"नही चलेगा ?"

"नहीं, नही, नही !!!" जोरों की आवाज आयी उसी भीड़ के अन्दर से। दयानाथ ने देखा : सभी तरह के लोग हैं इनमे...पण्डित शशिनाथ ठाकुर हैं, हाजी करीमवक्स है, मोसम्मात झुनिया है, अहीरों की विरादरी के गोनउड़ महतो और सहदेव राउत हैं, भुट्टू पासवान है, विजयवहादुरसिंह सिसोदिया है, जहदली जोलहा है, सोनमा ढोलिया है, अचकमनि मोसम्मात है...खेतिहर है, वनिहार हैं, हलवाहे-चरवाहे हैं—कौन नही है ?

दयानाथ अव हलों की ओर बढे। जुताई अव भी चल रही थी। कछार के अन्दर आकर दयानाथ ने हलवाहों से कहा—"टुनमा ! सुनता है ? खोल हल...और यह दूसरा कौन है ?...तू भी खोल !"

टुनमा खडा हो गया। वैल रुक गये। पिछला हल भी अचल।

फन्नी लपककर आगे आया और टुनाई मडड की वांह पकड़कर गरजा..."खवरदार ! हल खोला कि चमड़ी उधेड़ ली जायगी...देखता क्या है ? हांक वैल ! हांक !!"

लेकिन टुनमा सहमी आँखों से ताक रहा था फन्नी के चेहरे की ओर। बाक उसकी बन्द थी, हाथों और पैरों में मानो लक़वा मार गया था।

बैलों को खड़े होने का मौका मिला तो पेशाब करने लगे।

सभी चुप थे।

फन्नी ने पिछले हलवाहे की बाँह पकड़ी और फिर पीठ पर हाथ से थपथपाया—"तू ही आगे बढ, चल ! आ !"

वह भी आगे नहीं बढ़ा।

फणीन्द्र के मुँह से खीझ के मारे निकला—"खच्चर कहीं के !"

टुनमा की भवें तन गयीं। वह कड़ककर बोला—"मालिक, गाली मत दीजिये हमको ! हाँ !"

"हूँ !!"—दूसरे हलवाहे ने अपने साथी का समर्थन किया, स्वर में दृढ़ता थी।

फन्नी का चेहरा फक रह गया।

इतने में दयानाथ आगे बढ़े। अपने हाथों से उन्होंने हल के डंडे को जुए से खोल दिया। फणीन्द्र ने उन्हें रोकने की कोशिश की थी सही मगर दो आदमियों ने उसे पकड़कर अलग कर दिया था। जुए-समेत बैलों के दोनों जोड़े खुलते ही गाँव की तरफ चले और हलवाहे अब भी अपने-अपने हल की मूठ पकड़े खड़े थे। कछार की नम ज़मीन में फारें अब भी बीत-बीत-भर अन्दर खुभी रह गयी थीं। जुताई अभी आधी तो क्या, चौथाई भी नहीं हुई थी...

लोगों के चेहरे खुशी के मारे दमक रहे थे और दयानाथ गम्भीर मुद्रा में खड़ा था।

फणीन्द्र बकता हुआ, बुडबुड़ाता हुआ घर की ओर अपना रुख कर चुका तो हलवाहों ने हलों को कन्धे पर उठा लिया और कछार में से बाहर निकल गये।

दयानाथ ने लोगों से लौट चलने के लिए कहा, इशारों में उन्होंने

अपने लीडर की आज्ञा का पालन तत्काल किया।
श्री जैनारायण लौटकर सीधी पोखर की ओर गये।

१५

जैनरायन ने अगले ही रोज दो किता फ़ौजदारी लहेरियासराय-लाअर-कोर्ट मे दायर कर दी। एक थी मार-पीट की, दूसरी थी पराई भूमि पर दखल जमाने के प्रयास की। दयानाथ तो खैर दोनों में मुद्दालह बनाये गये थे, अलावा उनके, और चार आदमी पहले मुकदमे में और छ आदमी दूसरे मे लपेटे गये थे।

कत्ल का मुकदमा पहले से पेश था ही।

गाँव मे जितने भी समझदार आदमी थे, सबका ध्यान लहेरिया-सराय के अदालती कठघरों पर मँडरा रहा था।

दयानाथ लहेरियासराय पहुँचकर युवक वकील बाबू श्यामसुन्दरसिंह से मिले। उनका डेरा बलिभद्दरपुर मुहल्ले मे, एकडेमी स्कूल से सीधे पूरब पड़ता था।

श्यामसुन्दर बाबू वकील तो थे ही, साथ ही जनवादी नौजवान संघ की जिला-कमेटी (दरभगा) के प्रेसिडेण्ट भी थे। छात्र-जीवन मे उन्होने प्रादेशिक स्टूडेण्ट फेडरेशन के माध्यम से अपनी सार्वजनिक सेवा-भावना का पर्याप्त परिचय लोगों को दिया था। एक बार आप फेडरेशन के जनरल सेक्रेटरी (प्रादेशिक) भी निर्वाचित हुए थे और पौने दो साल तक शानदार तरीके से सगठन के मन्त्रित्व की जिम्मेवारी निभायी थी। पिता का देहान्त हुआ तो पिछले कई वर्ष वकील साहब

के घरेलू झञ्झटों में ही सर्फ़ हो गये। अब गृहस्थी सँभल चुकी थी। एक भाई एम० ए०, बी० एड० करके सीतामढ़ी कालिज में दर्शन-शास्त्र का प्रोफ़ेसर और सबसे छोटा दरभंगा मेडिकल कॉलिज का मेधावी छात्र था। वाक्शक्ति अच्छी होने के कारण उनका अपना पेशा भी काफी सन्तोषजनक था। पूर्वजों की उपार्जित सम्पत्ति के तौर पर सौ बीघा उपजाऊ जमीन थी, सो अलग। नयी पीढ़ी के प्लीडरों में जो तीन-चार नाम लोगों की जबान पर अक्सर फिसल आते थे, उनमें से एक नाम श्यामसुन्दर बाबू का भी होता था।

रूपउली में जो घटनाएँ इधर घटी थीं, उनका पता वकील साहब को था। अलावा इसके, दयानाथ पटने में नौजवान-संघ और किसान-सभा के नेताओं से मिला तो उनकी ओर से दरभंगा की जिला-आफिसों में रूपउली-काड की बाबत हिदायतें आयी थीं। श्यामसुन्दरसिंह ने ध्यान-पूर्वक दयानाथ की बातें सुनीं और बिना फ़ीस के ही मुकदमों में पैरवी का आश्वासन दिया।

नौजवान-संघ की जिला-कमेटी के प्रेसिडेण्ट की हैसियत से श्याम-सुन्दर बाबू ने दयानाथ से कहा—"अपने गाँव में नौजवान-संघ की एक शाखा खोलिये और नौजवानों को संगठित होने का अवसर दीजिये..."

"जी!"

"जी-जी नहीं, अगले रविवार को नौजवान-संघ के मन्त्री रूपउली पहुँचेंगे। वह आपसे इस बारे में बातें करेंगे, समझे?"

"सरकार!"

"हाजत में जो लोग बन्द हैं उन्हें जमानत पर छुड़वा क्यों नहीं लेते?"

इस सवाल को सुनकर दयानाथ ने मुँह बा दिया।

घर से निकलते वक्त उसे इसका ख़याल जरूर था और अभी नहीं तो विदा होते समय जमानत की बाबत वकील साहब से वह पूछता ही।

कुछ देर बाद दयानाथ ने कहा—"अब आज तो नहीं हुआ

सरकार !"

"क्या नही हुआ ?"

"सरकार, यहाँ कौन ज़ामिन होगा हम गाँववालों का ? गाँव जाकर राय-बात करेंगे फिर कोई इन्तज़ाम होगा..."

कुछ देर बाद श्यामसुन्दर बाबू ने कहा—"दो के लिए तो हम कल ज़मानत का इन्तजाम कर देंगे, बाकी आप गाँव से प्रबन्ध कर लीजियेगा..."

दयानाथ कृतज्ञता के मारे वकील साहब के पैर छूने को हुआ लेकिन रोक लिया गया—"आँ हाँ हाँ हाँ ! क्या कर रहे है यह आप ?"

गद्गद होकर दयानाथ ने कहा—"गाँव में हमारे यहाँ हल्ला था कि खून का मामला है, ज़मानत इसमें नही ली जायगी..."

इस पर उँगलियों से नाक चिकनाते हुए श्यामसुन्दर बाबू हँस पड़े, और हँसते-हँसते बोले—"नीलाम्बर पाठक के आदमियों ने आप लोगों को भरमाने के लिए यह शिगूफा छोड़ रखा होगा।"

"जी, हजूर ! यही बात होगी..."

वकील साहब ने हाथघड़ी देखी और उठ खड़े हुए। तीन-चार मुवक्किल अलग तख्तपोश पर बैठे थे, उनसे कहा—"मैं भोजन करके आता हूँ।"

दयानाथ ने आगे बढ़कर कहा—"मैं तब तक किसान-सभा के दफ्तर से हो आता हूँ।"

"जाइये, जगह मालूम है न ?"

"जी, लाइट हाउस सिनेमा से उत्तर, सडक के किनारे।"

"हाँ, लाल झण्डा लगा होगा और मकान खपरैल है।"

वकील साहब खड़ाऊँ खटखटाते अन्दर गये और दयानाथ किसान-सभा के दफ्तर की तरफ हुआ।

वहाँ से एक तो उसे मेम्बर बनाने की रसीद-बहियाँ लेनी थीं, दूसरे, किसान-सभा के किसी लीडर से कुछ राय लेनी थी।

पूछ-पाछकर वह दफ्तर पहुँचा तो वहाँ बिना मूँछोंवाले एक बाबू मिले। उन्होंने अपना नाम अली सफ़दर बताया। किसान-सभा की रसीद-बहियाँ तो २५-२५ की दो मिल गयी मगर आदमी एक भी नहीं मिला। अली सफ़दर थककर कहीं बाहर से आये थे और जेलवाले कम्बल पर लेट गये थे। दयानाथ कुछ बोलना-बतियाना चाहता था मगर सफ़दर ने कहा—"मैं बीड़ी-मजदूरों की यूनियन का यहाँ सेक्रेटरी हूँ, किसान-सभा के बारे में कुछ नहीं बता सकूँगा। कामरेड श्रीनारायण वारिस नगर गये हैं, दो रोज़ बाद लौटेंगे..."

साप्ताहिक 'जनशक्ति' के पिछले दो अंक दयानाथ वहाँ से खरीदता आया। दुअन्नी लगी थी।

फिर उसने सोचा कि बारह बजे की ट्रेन ले गाँव लौट चले और जमानत के लिए दो आदमियों को कल कचहरी ले आये...एक वह ख़ुद होगा। बाक़ी दो के लिए श्यामसुन्दर बाबू ने कहा है...

यह बात दयानाथ को जँच गयी। फौरन अदालत पहुँचा। वहाँ वकील साहब से पूछकर सीधे स्टेशन की ओर भागा। ख़ैर, गाड़ी मिल गयी।

आज ट्रेन में दया को वीरभद्र की बड़ी याद आयी। वह देर तक बीरू के बारे मे सोचता रहा...वीरभद्र आजकल रानीगंज (बंगाल) के नजदीक किसी गुजराती सेठ की कोयला-कम्पनी का मैनेजर बना बैठा था; चार सौ की तनखाह और रहने के लिए आलीशान बँगला—व्यक्तिगत सेवाओं के लिए आधे दर्जन नौकर...कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, दिल्ली, कानपुर, अहमदाबाद और पूना...कम्पनी की खर्च पर टूर करता फिरता है। पाँच-सात साल हो गये, गाँव नहीं आया। क्या ज़रूरत रह गयी उसे इधर झाँकने की ? '३८ में जेल से छूटा वीरभद्र तो दस-बीस रोज़ ससुराल में रहकर कलकत्ता भागा था। विद्यार्थी था, तभी से एक धनी घराने की बंगाली विधवा बीरू पर फ़िदा थी। सो, इस बार हमारे बीरू भाई को बंगाले की उस जोगिन ने पूरी तरह भेंड़ा बना

लिया। बगालिन का छोटा भाई ढाका मे मिल-मालिक था, उसीकी मेहरबानी से बीरू भी अब एक मालदार कम्पनी का मालिक बन गया है...हाय ! आज वह सही रास्ते पर होता तो रूपउली मे इन कुत्तों की एक भी नही चलती। चलती ? नही, बिलकुल नही चलती ! !

गरीब चमार की जिस तरह हत्या करवायी पाठक और जैनरायन ने, उसकी भारी प्रतिक्रिया हुई थी दयानाथ के मन पर। वह इन दुष्टों को किसी प्रकार भी क्षमा नही करना चाहता था...वह रात-दिन यही सोचा करता कि कैसे ग्राम-कण्टक निर्मूल किये जायें !...और इसीलिए दयानाथ को सशस्त्र क्रान्तिकारी वीरभद्र आज इतनी तीव्रता से याद आ गया। गाधीजी की अहिंसा मे तो खैर तब भी दयानाथ को आस्था नही थी और अब तो बेचारी अहिंसा को खुद ही कांग्रेसवालों ने विनोबा के अनाथालय मे भेज दिया है...तो क्या छिटपुट हत्याओं वाला सशस्त्र क्रान्ति का वही रास्ता रूपउली वालो के लिए मुक्ति-मार्ग होगा ? नही, नही, यह भी नही ! तो फिर क्यों दयानाथ के दिमाग मे वीरभद्र की वे दीप्त स्मृतियां चक्कर काट रही है इस समय ? किसानों और देहात के दूसरे गरीब वर्गों को शोषक शक्तियों के खिलाफ़ संगठित करनेवाला एक भी आदमी इन इलाको मे दयानाथ को दिखायी नही दे रहा था। वह सोचने लगा—'काश ! वीरभद्र, तुमने आज कही इधर के देहातो की यह जिम्मेवारी उठायी होती ! घर-घर तुम देवता की तरह पूजे जाते भाई ! और तुम्हे क्या पड़ी थी कि गुजराती सेठ की चाकरी करने गये ?"

फिर दयानाथ को ख़याल आया कि ग़रीबो का सकटमोचक वही होगा जो खुद ग़रीब के घर पैदा हुआ रहेगा; और, गरीब के घर में पैदा होने से ही भला लीडर की देह मे सुरखाब के कौनसे पर लग जाते हैं ? बहुत सारे आज के कांग्रेसी गरीब घराने के हैं, मगर बाबू लोगों का रग-ढग तो देखो जरा !...

तब दयानाथ का ध्यान गया सगठन के वर्गरूपों पर—कांग्रेस किन

वर्गों का संगठन थी और क्यों नहीं वह हम किसानों की एक भी समस्या हल कर सकी ? जमीदारों, सेठों और वकीलों-वालिस्टरों की यह जमात खुली तौर पर तब भी कहाँ खेतिहरों को अपने संगठन मे घुसने देती थी ? गरीब जनता चाहे गाँवों की रही हो, चाहे शहरों की—उसे कांग्रेस ने कभी अपने संगठन की रीढ़ नहीं बनाया...

पहले सोशलिस्ट पार्टी देहातों मे किसानों का साथ देती थी, जमींदारों के ख़िलाफ देहातियों के बीसियों मोर्चे पार्टी की निगरानी में जहाँ-तहाँ कायम हुए थे और कामयाबी भी हासिल हुई थी कई जगहों पर। लेकिन पिछले पाँच वर्षों से सोशलिस्टों का तेज घटता आया था। क़सूर इसमें पार्टी के साधारण कार्यकर्त्ताओं का नहीं, बल्कि ऊपर की सोशलिस्ट नेताशाही का था। दयानाथ की राय मे जयप्रकाश नारायण 'ढुल-मुल-यकीन' नेता थे।

मधुबनी सब-डिवीजन के अन्दर किसानों के बीच कम्युनिस्टों का भारी असर था। पूरा वक्त लगाकर काम करनेवाले कई दर्जन नौजवान थे। एक पैर उनका बाहर रहता था, दूसरा पैर जेल के अन्दर। बेईमान अफ़सरों, तानाशाह थानेदारों तथा सबडिवीज़न के ऊँचे अधिकारियों की नींद हराम थी उनके मारे। उधर के ज़मींदार और सेठ-साहूकार खीझ के कारण लाल भाइयों को 'प्लेग के कीड़े' कहते थे...दयानाथ राय उन नौजवानों का नाम रखे हुए थे 'लाल बहादुर'।

ज़ोर का धक्का खाकर समस्तीपुर-जैनगरवाली उस पैसेंजर गाड़ी के डब्बे खड़े हो गये तो दयानाथ ने सामने के मुसाफिर से पूछा—"तार-सराय ?"

"तारसराय तो पीछे छूट गया"—भभाकर हँसते हुए उस दढ़ियल मुसाफ़िर ने कहा—"सकरी है सबरी, कहाँ उतरना था आपको ?"

सोच-विचार और गुन-धुन मे गर्क था दयानाथ, अब समाधि टूटी तो चुपचाप गाड़ी से उतर गया।

स्टेशन से बाहर आकर गाँव की पगडण्डी पकड़ी उसने।

१६

ठीक तीसरे दिन पाँचों जवान हाजत से बाहर आ गये।

इसी बीच जैनरायन को राह चलते वक्त सरे-आम दो तरुणों ने पीट दिया, सो उन पर एक खिता मुकदमा वह फिर दायर कर आया था।

एक ओर तिकड़र थी, पैसे थे, पराई सम्पत्ति हड़पने की लालसा थी—दूसरी ओर सार्वजनिक ईमानदारी थी, जन-बल था और अत्याचारियों के प्रति असहिष्णुता थी।

जीवनाथ और जैकिसुन आदि ने अच्छी तरह समझ लिया कि सिर्फ अदालत के भरोसे इन दुष्टों से छुटकारा नहीं मिलेगा गाँव को। जन-बल को अच्छी तरह संगठित कर लेना चाहिए। अपनी रुपउली के इस जन-आन्दोलन को जन-संघर्ष की ज़िला और प्रदेश-व्यापी धारा से मिला देना होगा। जेल में बीड़ी-मजदूरों और बेदख़ली के ख़िलाफ लड़नेवाले किसानों से उनकी मुलाक़ात हुई थी। पिछले वर्ष जब ऑनरेबल मिनिस्टर पं०श्री नमोनाथ मिश्रजी श्रीकृष्ण पुस्तकालय का उद्‌घाटन करने के लिए मधुबनी पधारे तो बाढ़-पीड़ित इलाक़ों के निवासियों ने हज़ारों की तादात में आपके समक्ष प्रदर्शन किया था; उनकी माँग थी—कमला नदी में मधुबनी के आसपास कहीं 'स्लूश-गेट' का निर्माण हो और गाँव-गाँव में सस्ते राशन की व्यवस्था की जाय। पुलिस-अधिकारियों ने मन्त्री जी की हिफाज़त के लिए उनमें से दस आदमियों को गिरफ्तार कर लिया। पीछे 'शान्ति भंग करने और पब्लिक के बीच गड़बड़ी फैलाने' के अपराध में उनमें से छः प्रदर्शनकारियों को सब-डिवीजनल कोर्ट ने चार-चार महीनों की सज़ा देदी—बा-मशक्कत क़ैद की सज़ा। ऊँची अदालत में अपील की जाने पर सपरिश्रम कारावास का दण्ड 'मामूली क़ैद की दो महीने की सज़ा' रह गया। संयोग ऐसा हुआ कि उनसे भी

बहेरियासराय-जेल में जीवनाथ वगैरह की मुलाक़ातें होती रहीं : उन छः में दो किसान कम्युनिस्ट थे, एक विद्यार्थी कम्युनिस्ट था, तीन थे साधारण किसान-कार्यकर्त्ता। यह सम्पर्क था तो महीने-भर का ही, लेकिन पाँचों रुपउलीवाले हाजतियों के लिए वह 'सत्संग' ख़ूब चेतनाप्रद और स्फूर्तिकारक साबित हुआ।

वे आगे के संघर्षों के लिए दीक्षित होकर ही जेल से बाहर आये थे। उनकी बातों से आशा छिटकती थी, भरोसा टपकता था।

स्त्रियों को इस बात का विश्वास नहीं होता था कि वे इतनी आसानी से ज़मानत पर छूट आयेंगे।

जैकिसुन की माँ ने बेटे से कहा—"दुबले हो गये हो !" जीवनाथ की माँ को भी बेटे के प्रति ठीक यही शिकायत थी। लेकिन उन दोनो को यह बात सुनकर हँसी आयी। उन्होंने हाथ चलाकर कहा—"हमारा तो ओजन (वजन) बढ़ गया है, कहती क्या हो तुम लोग ?"

जीवनाथ की बैठक में बातें हो रही थी। दयानाथ भी थे। जैकिसुन था, उसकी माँ थी। सुतरी और लछमन थे। दूसरे भी चार जने थे। दालान की अँगनई खलिहान के लिए ठीक की जा रही थी, बीच आँगन में दवनी खम्भा गाड़ा जा चुका था। जीमड़ का ताज़ा कटा धड़ था, पत्तों समेत एक ऊपर-मुँही डाल उसमें रहने दी गयी थी। सामने ही लछमनसिंह के घर का पिछवाड़ दिखायी दे रहा था। उसकी औरत दीवार के छेद में आँख डाले गौर से सब-कुछ देख रही थी। पाँच साल का बच्चा पिछवाड़े के नजदीक खड़ा था, उसको पिता से बुलावे के इशारे की प्रतीक्षा थी। अगहन के प्रातःकाल की हल्की धूप सभी को अच्छी लगती है। वे उसकी मीठी सेंक ले रहे थे।

"मैं कहाँ मानूँगी..." जैकिसुन की माँ ने कुछ क्षण बाद प्रतिवाद किया..."कि जेल के अन्दर तुम लोगों का ओजन बढ़ गया है ! ऐसा भी कहीं हुआ है ?"

"चलो, इस बार हम दोनों जेल हो आयें, जैकिसुन की माँ !"

दया ने मुस्कराकर कहा—"न बढ जाय ओजन तो तुम फिर मुझसे बताना, हाँ !"

"चुप रहो बाबू, मैं तुमसे नही पूछ रही हूँ !"

"तो, अब और किससे पूछोगी ?"

जैकिसुन की माँ दयानाथ के प्रति तुनककर बोली—"मेरा बस चले तो इसी वखत बुड्ढे को गिलफदार कराके जहल भेज दूँ..."

देवर-भाभी की इस नोक-झोक में अपने को विजयी समझकर बाबू दयानाथ राय ने छँटी-खिचडी मूँछों पर बार-बार हाथ फेरा। जीवनाथ की माँ गम्भीर प्रकृति की महिला थी, वह इन बातों पर सिर्फ मुस्करा कर रह गयी। बाक़ी सबके चेहरे हुलास से दमक रहे थे।

जीवनाथ ने पीछे सजीदगी से कहा – "सचमुच चाची, हमारा ओजन सेर-सेर, डेढ-डेढ सेर बढ गया है। तुम समझती नहीं हो...हम हाजती कैदी थे। काम न धाम, खूब खाओ और आराम करो और गप्पें लडाओ; किताबों का इन्तजाम रहता है, क़ैदी पढ़-लिख भी सकता है चाची ! हमारे सुतरी झा पहाड़ा ख़तम करके आये हैं, न हो तो उन्ही से पूछ लो..."

जैकिसुन की माँ ने सुतरी झा की ओर विस्मय से देखा।

सुतरी ने दृढतापूर्वक कहा—"हाँ जैकिसुन की माँ ! मैं अब हनुमान चालीसा अपने-आप पढ लेता हूँ। टीसन पर मोसाफिरखाने मे रंग-बिरंगे कागज चिपके हुए थे, उस पर मोटे-मोटे आखरों मे बहुत-कुछ लिखा था। एक कागज से चार पाँती और दूसरे से दो पाँती मैंने खुद बाँच लीं। पूछ लो न जीबू से ?...क्यों जैकिसुन, अपनी माई से तुम्ही बता दो न !"

जैकिसुन और जीवनाथ ने साथ ही सिर हिलाया।

तब कुछ देर तक इधर-उधर की बातें होती रही। औरतें पहले ही चली गयी थी। धीरे-धीरे बाकी आदमी अपने-अपने काम पर गये। रहे दयानाथ, जीवू और जैकिसुन।

आगे की बातचीत का आधार था किसान-सभा की ग्राम-कमेटी का ढाँचा खड़ा करना। दो महीने के भीतर आसपास के गाँवों में ऐसी सरगर्मियाँ पैदा कर देना जिससे 'प्रथम रेहुआ-थाना किसान-सम्मेलन' सम्भव हो।

१७

टुनाई पाठक के लिए गाँव में रहना असम्भव हो उठा।

पाँचों युवक जेल से छूट आये थे। उन्होंने दुगुने जोश से काम शुरू कर दिया था। अपने घरेलू काम तो वे करते ही थे, किसान-सभा और नौजवान-संघ की ग्राम-कमेटियाँ उन्होंने कायम कर ली थीं। किसान-सभा के ५६ मेम्बर बन चुके थे, मेम्बर होने की फीस एक आना थी। दयानाथ और जैकिसुन ने घूम-घूमकर लोगों को किसान-सभा के उद्देश्य समझाये। टुनाई, जैनरायन और तीन-चार दूसरे आदमियों को छोड़कर बाक़ी सभी मेम्बर बनने को तैयार थे लेकिन अब रसीद-बही ख़त्म हो चुकी थी।

ग्राम-कमेटी बनी तो हाजी करीमबक्स उसके सदर चुने गये, दयानाथ उपसभापति और जीवू सेक्रेटरी। काम की देख-रेख और सलाह मशविरा के लिए सात मेम्बरों की छोटी किसान-काउन्सिल चुनी गयी। स्थायी फण्ड के लिए सेक्रेटरी ने अपील की तो पाँच मन धान का वायदा फ़ौरन मिल गया। अगले ही दिन वसूली भी उसकी हो गयी।

पहली बैठक में काउन्सिल ने पाँच फ़ैसले लिये थे :

१. पन्द्रह दिन के अन्दर स्थायी फण्ड में पन्द्रह मन धान और जमा

करना।

२. साप्ताहिक 'जनशक्ति' और दैनिक 'नवराष्ट्र' के लिए तीन-तीन महीने की अगाऊ रकम मनीआर्डर से भेज देना।

३. पुरानी पोखर की मरम्मत के लिए 'लघु सिंचाई-योजना' के अन्दर सरकारी मदद हासिल करने की कोशिश करना।

४. जिला और प्रदेश की किसान-सभाओं को ग्राम-कमेटी की हलचलों से वाकिफ रखना, अगले कामों के बारे में उनसे हिदायतें मांगना।

५ जमीन की बेदखली के खिलाफ़ गांव के लोगों का संयुक्त मोर्चा; पास-पड़ौस के किसानों से इस संघर्ष में मदद लेना और ज़रूरत पड़े तो उन्हें भी मदद पहुँचाना।

दफ्तर के लिये हाजी साहब ने अपने दालान की दो कोठरियों में से एक दे दी। हफ्ते में एक बार काउन्सिल की बैठक तय हुई और पन्द्रह दिन बाद ग्राम-कमेटी की बडी मीटिंग। स्थायी फण्ड की रकम और मैम्बरी की फ़ीस वग़ैरह से आने वाली रकमें किसके पास जमा रहेगी, यह सवाल उठा तो काउन्सिल के कुछ मेम्बरों ने दयानाथ का नाम लिया, कुछ ने हाजी साहब का। अन्त में दयानाथ के आग्रह से यह भार भी सदर को ही उठाना पड़ा।

हाजी, दया और जीवू के अलावा, काउन्सिल के बाकी चार मेम्बर थे: गोनउड़ महतो, विजयबहादुरसिंह, लछमनसिंह और जहदली जोलहा।

जीवनाथ ने 'नवराष्ट्र' और 'जनशक्ति' में छपने के लिये ये बातें लिख भेजी थी। अक्षर उसके अच्छे नहीं होते थे और भाषा भी खूब शुद्ध नहीं थी, परन्तु कुछ दिनों बाद ग्राम-कमेटी की स्थापना आदि के सम्बन्ध में वही समाचार 'नवराष्ट्र' में प्रकाशित हुआ। न्यूज़-एडीटर ने काँट-छाँटकर भाषा दुरुस्त कर दी थी...फिज़ूल के शब्द हटा दिये थे...दो-तीन जगहों पर आगे की लाइन पीछे और विराम-चिन्ह इधर-

उघर हो गये थे...लेकिन अब उन पंक्तियों में जान पड़ गयी थी, जोर आ गया था। जीवनाथ ने उछलते दिल से जैकिसुन को बताया—"देखा, अपनी खबर छपी है ?"

अखबार छीन लिया जैकिसुन ने। उसकी आँखें 'नवराष्ट्र' के कालमों में भटकने लगी।

"यों नहीं पाओगे, तीसरे पेज में देखो !"

आखिर जीवू ने उँगली से बता दिया।

जैकिसुन ने आदि से अन्त तक कई बार पढ़ा। गिनकर देखा, बारह पंक्तियों में छपा था।

दयानाथ के बैठकखाने में उस रोज अनायास काउन्सिल की मीटिंग हो गयी मानो। ग्राम-कमेटी के बारे में 'नवराष्ट्र'-जैसे लोकप्रिय दैनिक में इस प्रकार समाचार छपना रुपउली की सामूहिक आत्मा को आह्लादित कर रहा था। लोगों को लगा कि उनका यह स्थानीय प्रयास अखबार के माध्यम से समूचे बिहार की वाणी पा गया है और जिले-जिले में, थाने-थाने में मुखरित हो उठा है...

टुनाई पाठक अपने पापों से आपही आतंकित होने लगा। पुलिस के दो जवान डटे थे, डेढ़-दो महीनों से वह उनकी हिफाजत में था। उनके पीछे कम-से-कम सौ रुपये माहवार की खर्च आती थी, लाभ कुछ भी नजर नहीं आता था, बल्कि पाठक के प्रति लोगों का द्वेष इधर और बढ़ गया था। छोकरे खुलेआम उसे सुना-सुनाकर फकरा (फिक्रा) गुनगुनाते थे :

'पाठक टुनइयाँ।
पाठक टुनइयाँ !
पूलिस तोहर नानी
दरोगा तोर सइयाँ !
पाठक टुनइयाँ…!".

खूनवाला मुकदमा लम्बा खिंच रहा था। उधर श्यामसुन्दर बाबू

डटकर पैरवी कर रहे थे, इधर सिखाये-पढ़ाये गवाहों की नीयत हिल रही थी। जैनरायन ने जो केस चलाये थे, उनका तो और भी बुरा हाल था।

बरगद के नजदीक नौजवानों ने इस बीच एक अखाड़ा तैयार कर लिया था। शाम को रोज दस-पाँच शरीर वहाँ मिट्टी उकेरने लगे।

ताल ठोकने की आवाजें पाठक के कानों में पड़ती तो कलेजा फटने लगता उसका। रात में अक्सर वह सपने देखता कि लछमनसिंह उसकी कनपटियों में झापड़-पर-झापड लगा रहा है···

पुरानी पोखर के उत्तरी मोहार पर पण्डित शशिनाथ ठाकुर ने आँवले का पेड लगा रखा था। तीन-चार साल बाद अब वह काफी छत-नार हो आया था। पिछले वर्ष जैनरायन के भानजे ने इस आँवले के साथ एक ध्वजा गाड़दी और हनुमान जी का फोटो उसमें चिपका दिया। तभी से सप्ताह में एक बार, मंगल के सध्याकाल, वहाँ कीर्तन चालू हुआ जो अब तक जारी था। जैकिसुन और सुतरी झा कीर्तन में नियमित रूप से शामिल हुआ करते। शिक्षितों और सयानों की इस ओर अरुचि शुरु से ही थी। वे इस कीर्तन को 'छोकरों का हुरदंग, समझते।

जैनरायन का भानजा सतदेव अपने मामा से अलग था। ईमानदार और मेहनती आदमी था, सुघर—लेकिन चुप्पा—टाइप का। सुतरी झा की उससे खूब पटती थी। ये दोनों दर-असल रुपउली के अनपढ़ नौजवानों के स्वयंभू नेता थे। सुतरी झा साहस का प्रतीक था तो सत-देव परिश्रम का पुतला। दूसरों की मदद के लिए दोनों मुस्तैद रहते। श्राद्ध हो, ब्याह हो, स्कूलों का देहाती मंच हो, बांध पर मिट्टी डाली जा रही हो, बरसात का रुका पानी निकाला जाता हो, जीवछ नदी मे पानी की रोकथाम हो रही हो, मेले-ठेले मे जाना हो, स्कूल-पाठ-शाला का मकान बन रहा हो, जमीदार के बागो मे छिपकर आम-कटहल तोड़े जा रहे हों...वहाँ इन्ही दोनों में से एक-न-एक अगुआ

होता था।

जैकिसुन ने उन्हें नौजवान-संघ का मेम्बर बना लिया था। अब मंगलवारी कीर्तन के समय हनुमानजी को नौजवान-संघ के जोशीले गाने सुनाये जाने लगे।

१८

फसल इस बार दुगनी तो हुई ही थी, किसी-किसी के किन्हीं खेतों में तिगुनी-ढाई गुनी भी।

स्थायी फण्ड में तीस मन धान आ गये थे। उन्हें बेचकर साढ़े चार सौ रुपये की रकम बना ली गयी थी। डेढ़ सौ रुपये का चन्दा गन्ने की फसलवालों से आ गया था। कुछ चन्दे की उम्मीद रबी की फसलों से भी थी।

कमेटी के समझाने-बुझाने पर दो चमारों ने अदालत में पहुँचकर उस कत्ल का भण्डाफोड़ कर दिया। मुकदमा तो डिसमिस हुआ ही, उलटे दूनाई पाठक और जैनरायन के नाम वारण्ट निकल गये। गाँव छोड़कर दोनों डेढ़-डेढ महीने तक फरार रहे। पीछे कोर्ट में हाजिर हुए तो दो-दो हजार रुपयों के मुचलके पर छूटे। पाठक की हिम्मत नहीं हुई कि वापस आकर घर पर रहे। जैनरायन लौटा भी तो गुमसुम रहता, गाँव में या खेतों की ओर नहीं निकलता।

इस दरम्यान तीन सौ रुपये की लागत से पुरानी पोखर का उद्धार कर लिया गया। इस काम में गाँव के एक-एक मर्द ने हाथ बँटाया, किसी ने उजरत नहीं चाही। धमियापट्टी के मुसहड़ों ने मजदूरी लेकर मेहनत

की थी, एक-एक मजदूर ने 'जग्ग' समझकर डेढ़ गुना काम किया था...
पोखर का अन्दरूनी रक़बा यानी पेट चार बीघे का था, इसीसे ज्यादा गहराई से तो उसे नहीं खोदा जा सका; हाँ, चार फुट मिट्टी निकाल दी गयी। चारों ओर भिंड को ऊँचा कर दिया गया। तय था कि अगली बरसात में अब पुरानी पोखर अपने अन्दर इतना पानी भर लेगी कि गर्मियों में सूख नहीं जायगी बिलकुल।

दयानाथ और हाजी करीमबक्स 'लघु सिंचाई-योजना' के अधिकारियों से दरभंगा जाकर दो बार मिल आये थे, नीचे-ऊपर कई दफ्तरों में दरखास्तें भी भेजी थीं, लेकिन सिवाय आश्वासनों के अब तक कुछ मिला नहीं था। इस बारे में पूछताछ करने पर जीवनाथ और जैकिसुन को एक *विश्वस्त सूत्र से मालूम हुआ कि बाबू उग्रमोहनदास एम० एल०* ए० और बाबू कुलानन्ददास एम० पी० से राय माँगी गयी तो उन्होंने मना कर दिया। लोक-सभा और विधान-सभा के इन कांग्रेसी प्रतिनिधियों ने रुपउली को 'कम्युनिस्ट-प्रभावित गाँव' बताया था...नीलाम्बर के ससुर—जज साहब—से दोनों नेताओं की रब्त-जब्त थी, उन्हीं के यहाँ चाय और कॉफी के गर्म प्यालों से उड़ती भाप ने स्वराजी बाबुओं को बार-बार यह ताजी सूचना दी होगी।

जीवनाथ अब अपने इलाके का किसान-लीडर हो चला था। आस-पास के पच्चीस गाँवों में घूम-घूमकर किसान-सभा के १२०० मेम्बर उसने बना लिये थे, नौ ग्राम-कमेटियाँ चालू करा दी थीं। अनेक प्रकार की सामाजिक और प्राकृतिक विपत्तियों से ग्रस्त, मौजूदा शासन-व्यवस्था की विषमताओं से तबाह, तीस-चालीस गाँवों का वह परोपट्टा (परगना) इन किसान-संगठनों की तरफ़ भरोसे की निगाहों से देखने लगा। उच्च वर्ग के स्वेच्छाचारियों से अपनी हिफ़ाज़त के लिए, तानाशाह अधिकारियों से वाजिब हक हासिल करने के लिए बीसों देहाती तरुण आगे निकल आये—जीबू भाई उनके रहनुमा थे। उनमें कोई प्राइमरी स्कूल का बेरोज़गार मास्टर था, कोई मैट्रिक पास करके बेकार बैठा हुआ पढ़ुआ

बाबू था, कारखाने में छँटनी के बाद देहात को वापस आया हुआ कोई मजदूर था, कोई भूतपूर्व फौजी जवान था, स्ट्राइक के बाद हाई स्कूल या कॉलेज से निकाला हुआ कोई विद्यार्थी था, खाते-पीते किसान खानदान का कोई आदर्शवादी तरुण था...

अपनी बस्ती रुपउली के लिए जीवू ने जैकिसुन और लछमनसिंह वग़ैरह को छोड़ रखा था। प्रोत्साहन और परामर्श के लिए दयानाथ ही क्या कम थे ?

'मार-पीट' का अभियोग लगाकर जो मुकदमा उन पर जैनरायन ने दायर किया था, उसमें उन्हें महीने-भर की क़ैद हो गयी थी...हँसी-खुशी वह जेल गये और महीने-भर 'कल्पवास' कर आये। वैशाख का महीना और तीर्थ का निवास—कल्पवास ही तो हुआ।

जैकिसुन ने अपील करवायी थी, मगर सजा बहाल रही।

"मुझे यह सजा बिलकुल नहीं अखरी!"—दयानाथ ने वापस आकर कहा था।

पुरानी पोखरवाली जमीन पर अपनी दखल के सबूत में जो दस्तावेज जैनरायन की तरफ़ से उसके वकील ने कोर्ट के सामने पेश किया, उस पर '३० मार्च, १६५१' तारीख पड़ी थी...जमींदारी-उन्मूलन-बिल स्टेट-असेम्बली में पास हो चुका था मगर हाट, बाजार, पोखर, झील, बाग़-बगीचा वग़ैरह की शुमार जमींदार की 'व्यक्तिगत जायदाद' के अन्दर की जायगी या नहीं, इस बारे में स्वयं सरकार ही भारी दुविधा में थी। इस प्रसंग में किसानों की तरफ़ से श्यामसुन्दर बाबू की बहस ने मुन्सिफ को काफी प्रभावित किया था। फिर भी फ़ैसला मुल्तवी रखा गया।

१९

आमों मे अब के खूब फल लगे थे।

आज जेठ की पूर्णिमा थी।

जैकिसुन को आज जोरों से बाबा की याद आयी।

कई दिनों से वह इस पूर्णिमा का इन्तज़ार कर रहा था, बल्कि कई महीनों से। यों हर पूरनमासी की रात जैकिसुन बाँके बरगद के करीब जाता कि शायद बाबा की कृपा हो जाय, दर्शन दे दें शायद वह...लेकिन हरेक पूर्णिमा बेचारे को निराश करती गयी—दो पूरनमासियाँ हाजत मे गुज़र गयी थीं, उन रातो मे जैकिसुन को अपने बरगद बाबा याद आते रहे थे।

आज दिन के वक्त तूफान उठा था, दच्छिन-पच्छिम दिशाओं के कोने से बादल उमड़ आये थे। बूंदाबूंदी होकर रह गयी, पानी इतना भी नही बरसा कि धरती की धूल ही बैठ जाती।

चलो, अच्छा ही हुआ—जैकिसुन ने सोचा।

पहली ही शाम को खाना खाकर अपना रुख उसने रजबाँध की तरफ किया।

थोड़ी देर में लछमनसिंह और सुतरी झा भी आ धमके।

अँगोछी की गेंडुरी बनाकर जैकिसुन ने उस पर सिर रख लिया और लम्बा पड़ गया।

काफी देर तक इधर-उधर की बातें होती रही...

तूफान के बाद बूंदाबूंदी हो गयी थी, इसीसे आकाश बिलकुल स्वच्छ था। मजे की चाँदनी खिल रही थी। हवा बन्द थी, तथापि ऋतु का ताप असह्य नही था। चोंच मार-मारकर अधपके आमो को बरबाद करते हुए परिन्दों को रखवाले बागों के अन्दर बार-बार ललकार रहे थे—'हा-हा हो—हो—हूइ' और 'ले ले ले ले—ल ऽ ऽ ल ऽ ऽ ल ऽ ऽ

लऽऽऽऽऽ' की ये अजीब आवाजें रात के सन्नाटे को चीरती हुई दूर-दूर तक गूंज जाती थी...उन गूंजों से प्रतिध्वनित होकर दिग्-दिगन्त देर तक गनगनाते रहते।

जैकिसुन को आखिर नींद आ गयी।

सुतरी झा चला गया तो लछमनसिंह भी वहीं सो रहा, आधी धोती बिछाकर और बाँह का तकिया बनाकर।

कुछ ही काल बाद बरगद की डालों-टहनियों के झुरमुट में से विशाल आकृति वाला वही बूढ़ा निकल आया।

गत वर्ष की ही तरह जैकिसुन के माथे पर उसने अपना हाथ फेरा और बार-बार सूंघता रहा सिर के बालों को...

कब तक झुका रहता? पालथी मारकर आखिर बैठ गया, उसके पैर की उँगलियाँ जैकिसुन के माथे से छू रही थीं।

चाँद आसमान में ऊपर चढ़ता जा रहा था।

दिशाएँ शान्त थी, वायुमण्डल नीरव था।

थोड़ी-थोड़ी देर बाद आम के रखवालों की आवाजें उसी प्रकार उठती थी और उनका अनुरणन चराचर मे छा जाता था।

बाकी फिर शान्ति, फिर सन्नाटा!

२०

बाबा ने मुस्कराकर कहा :

"तुम लोगों ने तो बस्ती की हवा ही बदल दी! अब तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते पाठक और जैनरायन। पाठक और जैनरायन ही

क्यों, कोई हिम्मत नही करेगा तुम लोगों से टकराने की...मैं आशीर्वाद देता हूँ, रुपउलीवालो की यह एकता हमेशा बनी रहे ! सुखमय जीवन के लिए तुम्हारी यह सामूहिक प्रचेष्टा कभी मन्द न हो, स्वार्थ की व्यक्तिगत भावना कभी तुम्हारी चेतना को धुँधला न बनाये।"

जैकिसुन इसी अमृतवाणी के लिए कितने दिनों से तरस रहा था ! आज उसके कान जुड़ा रहे थे।

बाबा को अपनी आँखों के सामने पाकर उसका हृदय इस समय फूला नही समाता था। ऐसा लग रहा था कि पूर्वजों की आत्मा ही इस बुजुर्ग के रूप मे उसके समक्ष विराजमान है...

बाबा ने गम्भीर स्वरों मे डुबोकर फिर ये शब्द कहे :

"दस-पन्द्रह दिन शेष हैं मेरी इस देह के। उसके बाद तुम्हें बरगद का यह वृक्ष निष्प्राण नजर आयेगा। इसका एक-एक पत्ता सूख जायगा। छाल सूख जायगी, काठ सूख जायगा..."

जैकिसुन को यह सुनते ही कँपकँपी छूट गयी।...इतने दिनों बाद क्या वह यही सुनने आया है ?

बेचारे का कलेजा मुँह को आने लगा। चिल्ला भी तो नही सकता था वह ! हाय, अब क्या करे जैकिसुन ? क्या ऐसा कोई उपाय नही है जिससे बरगद का सूखना रुक जाय ?

उसके हृदय मे दुश्चिन्ता की जो आँधी उठ खड़ी हुई थी, बाबा को उसका आभास मिला तो हँसकर बोले :

"पागल कहीं का ! मन को क्यों छोटा करता है ?"

जैकिसुन ने कातर दृष्टियो से उनकी तरफ देखा—देखता रह गया ...उनकी अपनी ही जिन्दगी के बारे मे वह आश्वस्त हो लेना चाहता हो मानों ! पलकें झिप नही रही थी, नेत्रों का सारा तेज बाबा के चेहरे पर केन्द्रित करके अपने को अचल बना लिया था उसने।

बाबा वटेसरनाथ मुस्कराकर कहने लगे :

"मेरे पेड की सूखी लकड़ियो से ईंटें पका लेना। उन ईंटों से ग्राम-

कमेटी का मकान तैयार होगा..."

जैकिसुन से अब नही रहा गया, आँखों से आँसू वह चले। उसकी समझ मे नहीं आ रहा था कि किस क़सूर की यह सजा इस वेदर्दी से बाबा उसे दिये जा रहे हैं—इन कानों से इस प्रकार का अशुभ समाचार सुनना जैकिसुन को असह्य लग रहा था।

आँसू उसके रुक नही रहे थे।

बाबा ने उसकी ठुड्डी में दाएँ हाथ की अपनी तर्जनी छुआकर कहा :

"क्यों तू इस तरह उदास होता है ? तू चाहता है कि हमेशा मेरी देह अपंग पड़ी रहे ? उधर देख, पिछले उन्नीस वर्षों से यह पेड़ पगु होकर पड़ा है...इतनी अवधि में तो यहाँ एक दूसरा वृक्ष बढ़ आया होता। बेटा, यह मोह भी एक भारी रोग है। तुम लोगों को मेरे शरीर का मोह सता रहा है। आखिर बरगद का यह कुरूप ढाँचा कभी-न-कभी तो यहाँ से हटेगा ही...या कि ऐसा ही गिर-पड़ा रहेगा ?"

जैकिसुन ने सिर को नही हिलाया—न निषेध मे, न स्वीकृति में। अपने आँसू उसने धोती की खूँट मे पोंछ लिये थे।

बाबा ने क्षण-भर रुककर कहा :

"तो, लो एक बात बताऊँ..."

जैकिसुन की आँखों में उत्सुकता दौड़ गयी। बाबा कहते गये :

"पिछली बरसात में अपने ही बीज का एक बिरवा उग आया है, हाजी करीमबक्स के बाग में पीपल के कन्धे पर। मेरी फलियाँ खाने वाले एक कौए को यह श्रेय है कि उसने जाकर वहाँ बीठ कर दी थी। वह पौधा अब बालिश्त-भर का हो गया है। ठीक मेरी ही जगह पर तुम उस पौधे को रोप लेना। कौन, दस वर्ष बीतते-न-बीतते एक अच्छा-खासा छतनार बरगद यहाँ फिर लहरा उठेगा। आगे चलकर वही तुम लोगों का साथी होगा, समझे बाबू ?"

जैकिसुन ने सिर हिलाकर सकेत किया—"हाँ !"

उसकी पीठ पर हल्की थपकियाँ लगाकर बाबा बोले :

"तो, अब इस बुड्ढे को छुटकारा दो बेटा !"

जैकिसुन भरी-भरी, फैली-फैली आँखों से बाबा के चेहरे की तरफ देखने लगा। मन उसका सूना-सूना हो रहा था। हृदय की धड़कन गिनी जा सकती थी।

क्षण-भर के लिए जैकिसुन की पलकें मुँद गयी।

आँखें खोलने पर उसने सामने किसीको नहीं पाया...

२१

श्रावण की पूर्णिमा थी आज।

रंग-बिरंगी राखियों से पुरुषों की कलाइयाँ शोभित थी।

रजबाँध पर उसी जगह बरगद का नया पौधा लहरा रहा था। दतुअन-सा पतला सादा तना...दो पत्ते थे हल्की हरियाली में डूबे हुए, फुनगी पर एक टूसा था—दीप की लौ की तरह दमकता हुआ।

प्रकृति नये सिरे से मानवता को नवजीवन का सन्देश दे रही थी।

आसपास चारों ओर सावनी समाँ छायी हुई थी।

समय पर वर्षा हुई थी, सो, धान के पौधे झूम-झूमकर बच्चा बरगद को अभिनन्दित कर रहे थे।

सभी के चेहरे से उल्लास टपक रहा था।

हाजी करीमबक्स की कलाई में भी किसीने राखी बाँध दी थी। वह गुनगुना रहे थे :

"सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा !
हम बुलबुलें है इसकी, ये गुलिस्ताँ हमारा !"

दयानाथ कुछ नही बोल रहे थे, पोते को उँगली पकड़ाये टहल रहे थे। लछमनसिंह, सुतरी झा, सरजुग आदि कई आदमी पौधे की हिफाजत के लिए कैलियों से बाड़ बुन रहे थे। बना-बनाया गोल बाड़ रोपने का उत्सव समाप्त हो चुकने पर पौधे के गिर्द लगा देनी थी।

जीवनाथ और जैकिसुन अलग कुछ बातें कर रहे थे।

पास ही ताजे-कटे बाँस की हरी-लम्बी ध्वजा के सहारे एक श्वेत पताका फहरा रही थी। उस पर सिन्दूरी अक्षरों मे तीन शब्द अंकित थे :

स्वाधीनता !
शान्ति !
प्रगति !

०००

आलोचना-पुस्तक परिवार

आज के विद्यार्थी कल के देश-निर्माता है, इसलिए उन्हे ऐसा स्वस्थ साहित्य पढ़ने को मिलना चाहिए, जो उनके भीतर मानवीय गुणों का विकास करने वाला हो। आलोचना पुस्तक परिवार का उद्देश्य विद्यार्थियो के लिए ऐसी ही पुस्तकें सस्ते मूल्य पर उपलब्ध कराना है। इसके लिए हमने अच्छी पुस्तकों के असंक्षिप्त पेपरबैक संस्करण इस योजना के अन्तर्गत निकाले है। इसमें सब सुविधाओं को मिलाकर सदस्यों के लिए पुस्तक का मूल्य उसके सजिल्द संस्करण की तुलना में आधे से भी कम रह जाता है।

योजना की विशेषताएँ

- प्रतिष्ठित लेखक ● चर्चित पुस्तकें।
- असंक्षिप्त पेपरबैक संस्करण।
- सदस्यों को प्राप्त सब सुविधाएँ मिलाकर सजिल्द संस्करण की तुलना में लगभग आधा मूल्य।
- कम-से-कम रु० १०/- के आदेश पर डाक-व्यय निःशुल्क।
- आलोचना पुस्तक परिवार की पेपरबैक पुस्तकों में से वर्ष-भर में १००/- की पुस्तकें मँगाने पर रु० १०/- की मनपसंद पुस्तकें मुफ्त।
- एक पोस्टकार्ड लिखकर घर-बैठे मनपसन्द पुस्तकें प्राप्त करने की सुविधा।
- नयी पुस्तकों के बारे में नियमित जानकारी के लिए मासिक 'प्रकाशन समाचार' हर महीने निःशुल्क।

सदस्यों के लिए अतिरिक्त सुविधाएँ

- आलोचना पुस्तक परिवार के सदस्य पुस्तकों के सजिल्द सस्करण भ मँगा सकते है।
- राजकमल द्वारा प्रकाशित सजिल्द सस्करण पर १५% कमीशन दिय जाएगा।
- अन्य प्रकाशकों की पुस्तकों पर १२.५% कमीशन दिया जायेगा।
- राजकमल की रु० १०/- तक की पुस्तकें एकसाथ मँगाने पर डाक व्यय यहा भी निःशुल्क होगा; अन्य प्रकाशकों के लिए यह सुविध नही होगी।

सदस्यता के नियम—

- आलोचना पुस्तक परिवार के सदस्य केवल व्यक्तिगत पाठक ही ब सकते हैं। शिक्षण संस्थाओं, पुस्तकालयों और पुस्तक-विक्रेताओं लिए यह योजना नही है।
- सदस्यता-शुल्क मात्र रु० ३.०० है, जिसे पहले आदेश की पुस्तको मूल्य के साथ जोडकर भेजा जा सकता है।
- आदेश की पुस्तकें वी० पी० पी० से भेजी जाया करेंगी।
- राजकमल की पुस्तकों के लिए कोई अग्रिम नही भेजना होगा, लेकि बाहरी प्रकाशनों के लिए आदेश की आधी रकम अग्रिम भेजन होगी।
- इस योजना के अन्तर्गत पाठ्य-पुस्तकें नही भेजी जायेंगी।

सम्पर्क के लिए लिखें
आलोचना पुस्तक परिवार विभाग,
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,
८, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६